* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य ८ रुपये

श्रीदुर्गा-दशभुजा

'सीता अनुज समेत प्रभु नीलजलद तनु स्याम'

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

कल्याण

शान्ता महान्तो निवसन्ति सन्तो वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनानहेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

वर्ष ८९ | गोरखपुर, सौर चैत्र, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, मार्च २०१५ ई० | संख्या ३

पूर्ण संख्या १०६०

प्रार्थना

श्रीरामचंद्र कृपालु भजु मन हरण भव भय दारुणम्।
नवकंजलोचन, कंज-मुख कर-कंज पद-कंजारुणम्॥ १॥

कंदर्प अगणित अमित छबि, नवनील-नीरद-सुंदरम्।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि शुचि नौमि जनक सुता-वरम्॥ २॥

भजु दीनबंधु दिनेश दानव-दैत्यवंश-निकंदनम्।
रघुनंद आनँदकंद कोशलचंद दशरथ-नंदनम्॥ ३॥

सिर मुकुट कुंडल तिलक चारु उदार अंग विभूषणम्।
आजानुभुज शर-चाप-धर संग्राम-जित-खर-दूषणम्॥ ४॥

इति वदति तुलसीदास शंकर-शेष-मुनि-मन-रंजनम्।
मम हृदय कंज निवास कुरु कामादि-खल-दल-गंजनम्॥ ५॥

[विनय-पत्रिका]

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,१५,०००)

कल्याण, सौर चैत्र, वि० सं० २०७१, श्रीकृष्ण-सं० ५२४०, मार्च २०१५ ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- प्रार्थना	३
२- कल्याण	५
३- गोसेवाकी प्रेरणा (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	६
४- संसारमें सार क्या है? (स्वामी श्रीचिन्दानन्दजी महाराज 'सिहोरवाले')	११
५- भगवान्‌में मन कैसे लगे? (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१५
६- विमल पन्थ [कविता] (श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)	१८
७- अपेक्षा है विषादकी जननी (डॉ० श्रीशैलजाजी)	१९
८- साधकोंके प्रति— (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	२१
९- मन को बुहार [कविता] (श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	२३
१०- अन्त मति सो गति (श्रीइन्द्रमलजी राठी)	२४
११- जीवनमें सफलताके सूत्र (श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)	२५
१२- 'प्रिय लागे मोहि ब्रज की बीथिन' (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)	२८
१३- मनका संयम (श्रीगौतमसिंहजी पटेल)	३०
१४- सेवा-धर्म (डॉ० श्रीनरेशकुमारजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०)	३१
१५- निम्बार्क-सम्प्रदायकी सेवा-भक्ति (पं० श्रीरामस्वरूपजी गौड़ 'निम्बार्कभूषण')	३३
१६- भारतीय कलाके प्रतिमानोंमें शिवलिंग और भगवान् शिव (विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशजी उपाध्याय नार्मदेय, एम० ए०, पी-एच० डी०)	३५
१७- आवरणचित्र-परिचय	३७
१८- सेवा [कहानी] (श्री 'चक्र')	३८
१९- साधनोपयोगी पत्र	४०
२०- व्रतोत्सव-पर्व [वैशाखमासके व्रतपर्व]	४३
२१- कृपानुभूति	४४
२२- पढ़ो, समझो और करो	४५
२३- मनन करने योग्य	४८
२४- गोशालाओंकी सुरक्षा [सम्पादक]	५०

चित्र-सूची

चित्र		पृष्ठ
१- श्रीदुर्गा-दशभुजा	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- 'सीता अनुज समेत प्रभु नीलजलद तनु स्याम'	(,,)	मुख-पृष्ठ
३- राक्षसवधकी प्रतिज्ञा	(इकरंगा)	९
४- उमा-महेश्वर	(,,)	३६
५- राजा चित्रकेतु	(,,)	४८

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ २००
सजिल्द ₹ २२०

पंचवर्षीय शुल्क
अजिल्द ₹ १०००
सजिल्द ₹ ११००

विदेशमें Air Mail सजिल्द शुल्क — वार्षिक US$ 45 (₹ 2700), पंचवर्षीय US$ 225 (₹ 13500) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका**, सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **www.gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **(0551) 2334721**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता-शुल्क भुगतानहेतु gitapress.org पर **Online Magazine Subscription** option को click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—प्रेम सारी दैवी सम्पत्तियोंका मूल स्रोत है। जहाँ प्रेम है, वहाँ त्याग, सद्भावना, सहिष्णुता, क्षमा, उदारता, वदान्यता, मैत्री, अहिंसा, सेवा, सरलता, उन्मुक्तहृदयता, निष्कामता, प्रसन्नता, सत्य, विश्वास, साहस और सौजन्य आदि सद्गुण अपने-आप आ जाते हैं। इसके विपरीत जहाँ स्वार्थ है, वहीं भय है और जहाँ भय है, वहाँ परिग्रह, दुर्भाव, असहिष्णुता, कामना, क्रोध, कृपणता, अनुदारता, द्वेष, वैर, कपट, दम्भ, विषाद, अविश्वास, घृणा, लोभ, प्रतारणा, कायरता और कुटिलता आदि नीच वृत्तियाँ अपने-आप उत्पन्न हो जाती हैं।

जहाँ दैवी सम्पत्ति है, वहाँ सहज सुख, उल्लास आनन्द, आत्मीयता रहते हैं और जहाँ आसुरी सम्पत्ति है, वहाँ शोक, विषाद, दुःख, परायापन रहते हैं।

याद रखो—प्रेम जितना शुद्ध होगा, उतना ही भगवदभिमुखी होगा और जहाँ भगवत्प्रेम होगा, वहाँ मनुष्यमें निर्भयता और निश्चिन्तता इतनी अधिक बढ़ जायगी कि वह कर्तव्यपालनमें, सत्यभाषणमें, दूसरोंका उपकार करनेमें, अपना सर्वस्व देकर भी सेवा करनेमें और जीवनकी महान् कठिनाइयोंमें जरा भी नहीं डरेगा। वह दृढ़प्रतिज्ञ, मनस्वी, तेजस्वी, साहसी और वीर होनेके साथ ही अत्यन्त विनम्र, आदर्श, विनयी, मधुरभाषी, समझकर करनेवाला और शान्तिप्रिय होगा। उससे किसीका अपकार तो होगा ही नहीं। वह सर्वथा निःस्वार्थ, भगवद्विश्वासी, भगवत्कृपापर निर्भर रहनेवाला और सदा आनन्दमें निमग्न रहनेवाला होगा।

भगवत्प्रेमी या तो सारे संसारमें भगवान्‌को देखता है या सारे संसारको भगवान्‌में देखता है। इसलिये वह स्वाभाविक ही निर्भय, नमनशील, विश्वप्रेमी, विश्वसेवक और विशालहृदय होगा। उसका न तो कोई वैरी रहेगा और न उसकी किसी वस्तुविशेषमें आसक्ति ही होगी। वह नित्य भगवत्-कर्म-रत, भक्तिरसाप्लुतहृदय और भगवत्परायण होगा।

× × × ×

याद रखो—किसी भी भयमें इतनी शक्ति नहीं है जो भगवत्कृपाकी अपार शक्तिके सामने ठहर सके।

किसी भी पापमें इतनी शक्ति नहीं है जो भगवद्भक्तिके सामने टिक सके।

किसी भी तापमें इतनी शक्ति नहीं है जो भगवत्प्रेमकी शीतलताके सामने रह सके।

याद रखो—तुमपर भगवान्‌की अनन्त कृपा है, इसलिये भगवान्‌की भक्ति तुम्हारे हृदयमें लहरा रही है और भगवत्प्रेममें तुम डूबना ही चाहते हो। फिर भय, पाप, ताप कहाँ रहेंगे? उनको तो नष्ट हुए ही समझो। जबतक तुम्हें पाप-ताप तथा भय सताते हैं, तबतक तुमने सचमुच भगवत्कृपापर विश्वास ही नहीं किया। भगवान्‌ने स्वयं घोषणा की है—जो मुझमें विश्वास करता है, वह मेरी कृपासे सारी कठिनाइयोंसे तर जाता है।

तुम भगवान्‌के हो, भगवान् तुम्हारे हैं। उनसे अधिक निकटस्थ आत्मीय तुम्हारा और कोई नहीं है। वे तुम्हारी जितनी और जहाँतक सँभाल करते हैं, उतनी और वहाँतककी तुम कल्पना भी नहीं कर सकते।

याद रखो—भगवान् तुम्हारे दोषोंको तुरंत क्षमा कर देंगे और तुम्हें सदाके लिये अपना लेंगे। तुम एक बार उनकी सुहृदयता और आत्मीयतापर पूर्ण विश्वास करके उन्हें मुक्तहृदयसे पुकार तो लो!

'शिव'

गोसेवाकी प्रेरणा

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

आजकल इस देशमें गोधनका प्रतिदिन ह्रास होता जा रहा है, जिससे गोदुग्ध एवं कई लाभोंके अभावमें हाहाकार मचा हुआ है। शास्त्रत: और लोकत: विचार करके देखें तो यह मालूम होगा कि धनोंमें गोधन एक प्रधान संरक्षणीय धन है। अत: हम सबको अपनी शक्तिके अनुसार अपने गोधनकी सेवा करनी चाहिये। हम सब यदि गौओंकी सेवा न करें तो यह हम सबकी कृतघ्नता है; क्योंकि हम सब गौओंसे जितना लाभ उठाते हैं, उसके बदलेमें उसकी सेवा न करें तो कृतघ्नता ही कही जायगी।

वास्तवमें गौओंकी सेवाके विषयमें कहनेका मैं अधिकारी भी नहीं हूँ; क्योंकि जैसे आपलोग दूध पीते हैं, वैसे ही मैं भी दूध पीता हूँ। गोसेवा आप भी नहीं करते और मुझसे भी नहीं बनती। इस कारण भी मैं अधिकारी नहीं हूँ। अच्छे पुरुष, जिन्होंने गौओंकी सेवा की है, उनके द्वारा तथा शास्त्रके द्वारा अपनेको जो शिक्षा मिल रही है, उसको आधार बनाकर हम लोगोंको गौओंकी सेवा करनी चाहिये।

पूर्वके जमानेमें नन्दके यहाँ लाखों गौएँ थीं। विराटके पास करीब एक लाख गायें थीं। दु:खकी बात है कि इस समय गौएँ बहुत काफी मात्रामें मारी जा रही हैं। यह कानून है कि १४ वर्षसे कम आयुकी गौएँ न मारी जायँ, किंतु यह कानून केवल सरकारी कागजोंमें ही है। यह कानून काममें लानेके लिये नहीं बनाया गया है, केवल लोगोंको दिखानेके वास्ते बनाया गया है ताकि लोगोंमें उत्तेजना न हो। छोटे-छोटे बछड़े-बछिया भी मारे जाते हैं; क्योंकि उनका चमड़ा मुलायम होता है, बढ़िया होता है। अपने-आप मर जानेवाली गौका चमड़ा कठोर होता है, उनके जूते खराब तथा सस्ते होते हैं और जीवित गौका या बछड़े-बछियाका चमड़ा उतारा जाय तो वह ज्यादा मुलायम होता है। मुलायम चमड़ेसे बनी हुई टोपी, घड़ी, बैग और जूता आदि महँगे बिकते हैं।

कुछ सज्जन कलकत्ते कसाईखानेमें गये थे। गौओंकी हत्या किस प्रकार होती है, इसके विषयमें उन्होंने बताया कि गौओंके ऊपर गरम खूब खौलता हुआ पानी छिड़का जाता है, जिससे उनका चमड़ा मुलायम हो जाता है। खौलते पानीको छिड़ककर लाठियोंसे उनको मारा जाता है, जिससे चमड़ा फूल जाय और खूब मुलायम हो जाय। इसके बाद उसके जीते ही उसका चमड़ा उतारा जाता है, चमड़ा उतारते हुए वह काँपती, डकारती-छटपटाती, तड़प-तड़पकर मर जाती है। किसी-किसी कसाईखानेमें तो गायको मार-मारकर उसका चमड़ा उतारा जाता है, ऐसी भी बात सुनी जाती है और किसीमें ऐसा सुना जाता है कि पहले चमड़ा उतार लिया जाता है फिर वह मर जाती है या उसका कत्ल कर दिया जाता है। उनका कहना है कि चमड़ा पहले इसलिये उतार लिया जाता है, जिससे ज्यादा मुलायम रहे। यह भी बताते हैं कि उस चमड़ेके जो जूते बनते हैं, वे एक नम्बरके होते हैं।

इस पापके भागी छः होते हैं—(१) गायको कसाईके हाथ बिक्री करनेवाले, (२) गायके वधके लिये सलाह-आज्ञा देनेवाले, (३) गायको मारनेवाले, (४) मांस खरीदने या पकानेवाले, (५) गोमांस-भक्षण करनेवाले और (६) चमड़ा या अन्य अवयवसे बनी वस्तुओंका उपभोग करनेवाले। ये सभी समानरूपसे पापके भागी होते हैं।

मांसके विषयमें मनुजीने बतलाया है कि हिंसा करनेवाले, उसमें सम्मति देनेवाले, बिक्री करनेवाले, पकानेवाले और खानेवाले—ये सभी समान-भावसे पापके भागी होते हैं। इस बातको सुनकर आप सबको इसके विरोधमें आजसे ही प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि जिन

होटलोंमें गौका मांस पकाया जाता है, हम कभी उन होटलोंमें नहीं जायँगें। कुछ लोग कहते हैं कि हम होटलोंमें तो जाते हैं पर मांस नहीं खाते। मांस भले ही न खाओ पर उसका रस दालमें, भातमें, परसनेवाली चम्मच आदिके द्वारा पड़ जाता होगा, सारे सामानोंमें चम्मच पड़ती ही होगी, हाथ वही, संसर्ग वही। उसके परमाणु तो आ ही जाते हैं। इसलिये होटलोंमें न जानेकी शपथ लेनी चाहिये। होटलोंमें न जानेसे मर तो जायँगे नहीं, होटलमें गये बिना भी संसारमें बहुत लोग जी रहे हैं, कोई मर नहीं रहे हैं। यह एक मामूली बात है। इसलिये हमलोगोंको यह तो प्रतिज्ञा ही कर लेनी है कि किसी भी होटलमें जाकर हम भोजन नहीं करेंगे। यह भी मामूली बात है, उत्तम बात तो यह है कि बाजारकी कोई चीज न खायी जाय, चाहे खोमचेका हो या मिठाई हो अथवा पान हो या चाय; क्योंकि बाजारकी सभी चीजें अपवित्र होती हैं। उसमें घी अपवित्र, चीनी अपवित्र, जल अपवित्र—सभी अपवित्र। इतना त्याग न हो सके तो कम-से-कम होटलमें खानेका त्याग तो कर ही देना चाहिये।

होटलोंमें खानसामे सभी धर्म-जातिके होते हैं, उसमें कोई जातिका भेद नहीं रहता। वहाँ कोई शुद्धि नहीं रहती, कोई अण्डे, मांस, मदिरा रखते हैं। इनका नाम लेनेसे मनुष्यको पाप लगता है। मैं जो उनके नामका उच्चारण करता हूँ, वह उनके निषेधके लिये करता हूँ, इसलिये शायद पाप नहीं लगे। इस विषयमें तो सौगन्ध कर ही लेनी चाहिये कि किसी भी होटलमें नहीं जाना है। दूसरी उत्तम बात यह है कि चमड़ेका सामान काममें लाना ही नहीं है; क्योंकि मालूम नहीं होता कि यह चमड़ा अपनेसे मरी गायका है या मारी गयी गायका, मरी हुई गायका चमड़ा उतारा गया है या चमड़ा उतारकर फिर वह मारी गयी है। चमड़ा चाहे पहले उतारे या बादमें, दोनोंमें पाप है। चमड़ा उतारकर मारे तो और ज्यादा पाप है। इसलिये चमड़ा काममें नहीं लाना चाहिये। यदि चमड़ा काममें लाते हैं और उसके विषयमें कहा जाता है कि यह 'खादी प्रतिष्ठानका चमड़ा है, मरी हुई गऊका है, अपनी मौतसे मरी हुई गायका चमड़ा है, मारी हुई गऊका नहीं, तो हमारा इतना विरोध नहीं है। उसको काममें लाया जा सकता है, जब आपको पूरी जानकारी हो जाय कि वह चमड़ा अपनेसे मरी हुई ही गायका है, इसकी हिंसा नहीं की गयी है, तब भी यह प्रतिज्ञा जरूर करनी चाहिये कि जो गायें चमड़ेके लिये, मांसके लिये मारी जाती हैं, उन गायोंके चमड़ेका जूता वगैरह काममें नहीं लाऊँगा। गायोंके चमड़ोंके जूतोंका और होटलमें जानेका त्याग कर देना चाहिये। किसी भी होटलमें जाकर खाना या होटलकी चीज मँगाकर या रेलमें होटलकी चीज मँगाकर खाना आपको जँचे तो एकदम सदाके लिये त्याग देना चाहिये; क्योंकि कितने वर्ष जीओगे, आखिरमें तो मरोगे ही। ऐसे कलंकित होकर संसारसे क्यों जायँ। ऐसा करना अपने कुलमें, जातिमें, देशमें कलंक लगाना है। आप यदि इसे ठीक समझें तो 'परमात्माकी जय' बोलकर इसकी स्वीकृति दें और इसकी प्रतिज्ञा स्वीकार करें।'

दूसरी बात यह है कि जिसे आप अपनी यथाशक्ति कर सकते हैं—हम गायका दूध पीते हैं, इसलिये हमें हर एक प्रकारसे गायकी सेवा करनी चाहिये। जहाँ कहीं गोरक्षा-आन्दोलन हो उसमें भाग लेना चाहिये, गायोंकी हिंसा बन्द हो जानी चाहिये। कुछ लोग कहते हैं कि यदि गायें कटना बिलकुल बन्द हो जायँगी तो बूढ़ी गायोंको घास और चारा कहाँसे मिलेगा। चारा पैदा करनेवाला भगवान् संसारमें मौजूद है, भगवान् कहीं मरा नहीं है। उसके भरोसेपर आप गौओंका पालन करें।

इस विचारसे तो यह भी सवाल पैदा हो सकता है कि जो बूढ़े-बूढ़े आदमी हो गये हैं, उनको मार डालना चाहिये; क्योंकि वे निकम्मे हो गये हैं। वे

काम तो कुछ करते नहीं, अन्न खा जाते हैं, जवान आदमीके हिस्सेका अन्न खा जायँगे तो जवान आदमी खाने बिना मरेंगे, बूढ़े आदमीको खिलानेसे कोई जवान मरा है आजतक? सब बेवकूफीकी बात है, बेसमझीकी बात है। इतने जंगल हमारे हिन्दुस्तानमें पड़े हैं, लाखों गायें जंगलोंमें रहकर अपना जीवन-निर्वाह कर सकती हैं, घास खाकर जी सकती हैं, इसलिये उन गायोंको हम जंगलोंमें छोड़ दें तो अपनी पूरी आयु पाकर वे मरेंगी और चरेंगी जंगलमें। और दूसरी बात यह है कि उन गायोंको हम खेतोंमें रखकर चरायें तो आप हिसाब लगाकर देखें गऊसे जो गोबर होता है, उससे तथा जो गाय मूत्र करती है उससे खेतीकी उपजमें वृद्धि होती है। गोमूत्रसे खेती अधिक पैदा होती है। एक मन खाद दी जाती है तो उससे कई मन अनाज पैदा होता है। चारा, घास और अन्न सब पैदा होता है। गाय जो कुछ खाती है उसके अनुसार स्वयं खाद पैदा कर देती है, तीसरी बात यह है कि भगवान् स्वाभाविक ही वर्षा करते हैं। संसारमें जितने भी प्राणी हैं, पशु-पक्षी, कीट-पतंग सबके लिये भगवान् सोच-समझकर हिसाब लगा करके वर्षा और अन्न पैदा करते हैं और आवश्यकता होती है तो उससे अधिक भी पैदा करते हैं फिर अपनेको क्या चिन्ता है! आज यदि वर्षा न हो तो क्या जलसे खेती करके हम जी सकते हैं। यह सोचना चाहिये कि संसारमें जो कुछ काम हो रहा है सब भगवान्‌की नजरमें हो रहा है, ऐसा सोचकर भगवान्‌पर इतना तो भरोसा करना ही चाहिये कि जो पैदा करता है वही जिलाता है और समयपर उसे समाप्त करता है। हम बीचमें पड़कर उसकी क्यों पंचायत करें। इसलिये हर एक प्रकारसे हमें गऊकी रक्षा करनी चाहिये। इसमें हमलोगोंको केवल निमित्त बनना है, करनेवाले तो सब भगवान् हैं, मेरा किया होता क्या है? भगवान् अर्जुनसे गीतामें कहते हैं कि 'हे सव्यसाची अर्जुन! तू निमित्तमात्र हो जा; क्योंकि बहुत-से योद्धा तो मेरे द्वारा पहलेसे ही मारे हुए हैं, तू नहीं भी मारेगा तो भी सब मरेंगे, मैं तुम्हें केवल निमित्त बनाता हूँ।'

'निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन्।'

'ऋतेऽपि त्वां न भविष्यन्ति सर्वे।'

भगवान् हमलोगोंको केवल निमित्त बनाते हैं। निमित्त तो बन जाना चाहिये। करनेवाले तो सब भगवान् हैं। इतना निमित्त बन जाना चाहिये कि गौओंके लिये कोई भी सवाल उठे तो एक स्वरसे सबके साथ शामिल हो जाना चाहिये। हिन्दुस्तानमें गौओंका वध नहीं होना चाहिये। महात्मा गांधीने जब स्वराज्य नहीं मिला था, उस समय यह घोषणा की थी। यह बात पहले उठ चुकी थी कि हिन्दुस्तानमें गायें कटनी बन्द होनी चाहिये। उन्होंने कहा कि 'हिन्दुस्तानमें गोहत्या बन्द होनी चाहिये' का सवाल उठाना ठीक है, मेरी भी यही इच्छा है, मैं स्वराज्यके लिये चेष्टा करता हूँ तो मेरा प्रधान सवाल गायोंके लिये ही है। स्वराज्य अपने हाथमें आ जाय, उसके बाद मेरी यह इच्छा है कि 'मैं गोहत्याको बन्द कर दूँगा।' सम्भव है आज वे यदि जीवित होते तो शायद अपनी कही हुई बात याद करके गोहत्या बन्द करते। वे तो हैं नहीं, अब किसको कहें? हिन्दुस्तानमें स्वराज्य पानेका उनका आदेश और उद्देश्य दोनों था, तो स्वराज्य तो मिल गया, उसकी सिद्धि करनेके लिये हमलोगोंको चेष्टा करनी चाहिये, हमारे देशमें गायोंका कटना एकदम बन्द हो जाय इसके लिये बहुत-से उपाय हैं। पहले तो गायोंकी वृद्धिका उपाय करना चाहिये और गोहत्या बन्द होनी चाहिये।

भगवान् रामके वनवासकालमें राक्षस मनुष्योंको मारकर उनका मांस खा जाते थे, मनुष्योंकी हड्डियोंको देखकर भगवान् रामकी आँखोंमें आँसू आ गये और उन्होंने भुजा उठाकर यह प्रतिज्ञा की कि पृथ्वीको राक्षसोंसे हीन कर दूँगा और सब आश्रमोंमें जा-जाकर उन्होंने मुनियोंको सुख दिया था।

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह॥
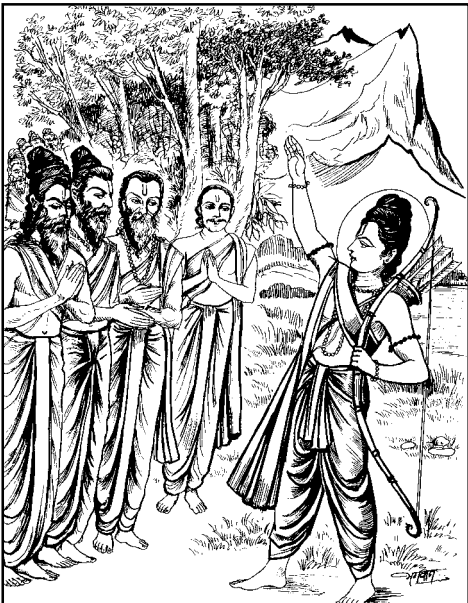
उस समय ऋषि-मुनियोंको राक्षस लोग खा जाया करते थे और आजकलके मनुष्य ही राक्षस हैं, वे गायोंको खाकर चारों ओर हड्डियोंकी ढेरी लगा रहे हैं। संसारमें जब ज्यादा अत्याचार होता है तब भगवान् अवतार लेते हैं अथवा भगवान्के बहुत-से जो भक्त होते हैं, उनमें वे प्रेरणा करते हैं। इस प्रकार वे वह काम कर लेते हैं तो भगवान्को आना नहीं पड़ता। इसलिये हमलोग ही भगवान्के भक्त बनकर अगर इस कामको करना चाहें तो भगवान्की मदद पाकर हमलोग भी कर सकते हैं, जैसे अर्जुनने भगवान्की मदद पाकर युद्धमें असाधारण वीरोंको भी मार डाला। इसी प्रकार काम तो करनेवाले भगवान् हैं, हमलोग तो केवल निमित्तमात्र ही बनते हैं। अतः कम-से-कम निमित्तमात्र तो बनना ही चाहिये। एक तो हर एक भाइयोंको अपनी जैसी-जितनी शक्ति हो उसके अनुसार गोचर-भूमि छोड़नी चाहिये। जिसकी यह शक्ति न हो तो घरमें एक-दो गाय रखनी चाहिये। यदि इतनी भी शक्ति न हो तो यही प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हम गऊका ही दूध पीयेंगे, भैंसका नहीं पीयेंगे। इससे भी गायोंको मदद मिलेगी और जैसे भी हो किसी प्रकारसे भी गायोंकी सर्वथा सर्वदा मदद करनी चाहिये। गोचरभूमि छोड़ना भी बड़ी भारी सेवा है। गायोंको घरमें रखकर उनकी सेवा करना तो एक नम्बर है ही, हर एक प्रकारसे हमको गायोंकी सेवा करनी है। जैसे गऊशाला है, इसमें अपनी शक्तिके अनुसार सभी भाई लोग मदद करते ही हैं, उसमें और विशेष मदद करनी चाहिये। आजकल ब्राह्मणोंको जो गऊदान किया जाता है, वह दान देना तो बहुत उत्तम है ही, किंतु यदि कोई ब्राह्मण गऊ लेकर उसका पालन नहीं कर सके और बिक्री कर दे या किसी भी प्रकारसे वह कसाईके हाथमें चली जाय तो वह ब्राह्मण भी नरकमें जायगा और गोदान करनेवाला भी। इसलिये ब्राह्मण उसे अपने घरमें रखकर उसका पालन करें। गऊ-दानकी महिमा शास्त्रोंमें लिखी भरी पड़ी है। ऐसी परिस्थितिमें आजकलके समयमें यदि किसीको गऊ देना हो तो गऊशालामें भेज दे। गौशालामें गऊके दूधका अधिक दाम देना भी गऊकी सेवा है। आजकल बहुत-सी गऊशालाएँ चन्देसे ही चल रही हैं। एक महात्मा बहुत उच्चकोटिके थे, उनका नाम था मंगलनाथ। उनके नामसे ऋषीकेशमें एक गऊशाला है। हम सभी उसके मेम्बर हैं, जिससे किसी भी प्रकार गऊशाला कायम रहे। उसमें तीन-चार हजार रुपया यहाँसे सहायता मिल जाती है, वह वर्षोंसे इसी प्रकार चल रही है। उससे गउओंकी सेवा हो रही है और अपनेको दूध मिल रहा है। नहीं तो इकट्ठा इतना दूध कहाँ मिलता। कलकत्तेमें जो भाई लोग रहते हैं, उनको कलकत्तेमें पिंजरापोल गऊशालाकी सेवा करनी चाहिये। सभी जगह पिंजरापोल गऊशाला है ही, उसकी सेवा करना भी गऊकी सेवा है। हर एक प्रकारसे दूधकी वृद्धि करनी चाहिये। जो ठाली (ठाठ) गऊ है, वृद्ध गऊ है उसकी भी सेवा करनी चाहिये। इस विषयमें कितने भाई तो कहते हैं कि गऊशालामें

जो ठाली गऊ है यानी बुड्ढी गऊ है, निकम्मी गौ है उसकी सेवा करनी चाहिये, उनकी वृद्धि करनी चाहिये, दूधवाली गऊ बेच देनी चाहिये। कितने कहते हैं कि अपने सभी लोगोंको दोनों प्रकारकी गउओंकी सेवा करनी चाहिये। कितने कहते हैं कि नया डेयरी-फार्म खोलना चाहिये, दूधवाली गउओंकी सेवा करनी चाहिये, ठाली गऊ अगर मरे तो मर जाय। इस तरहकी आवाज आती है।

इन बातोंमें मुझे तो यह बात अच्छी मालूम देती है कि सभी गउओंकी सेवा करनी चाहिये, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ी हो। जवानकी सेवा दूधके लिये करनी चाहिये और बुड्ढीकी सेवा धर्मके लिये करनी चाहिये। अपने घरमें जितने मनुष्य होते हैं, कोई बूढ़े और कोई जवान होते हैं, सबकी सेवा करना अपना कर्तव्य है। बूढ़ोंकी सेवा इसलिये कि उन्होंने हमारी सेवा की है, वे हमारी सेवा करते-करते बूढ़े हो गये। आजकल लोग कहते हैं कि 'बूढ़े जल्दी-से-जल्दी मर जायँ' यह हमारी भावना, हमारी बुरी नीयत है। हमको तो यह भाव रखना चाहिये कि 'हमारे बूढ़े माता-पिता सौ वर्षोंतक जीयें।' हमारी भावनासे वे सौ वर्षतक जीयें तो वे जीयेंगे नहीं। हम कह दें कि कल ही मर जायँ, तो मरेंगे नहीं। अपनी इच्छासे न तो कोई जीयेगा और न कोई मरेगा। उनके मरनेकी इच्छा करके हमने अपराध कर लिया। तो स्वयं अपराध क्यों करें, हमें तो बढ़िया-से-बढ़िया इच्छा रखनी चाहिये। सब गौओंकी सेवा होनी चाहिये, जीवमात्रकी सेवा होनी चाहिये।

राजा दिलीपने गऊकी सेवा करके रघुको प्राप्त किया। जिनके नामसे संसारमें रघुवंश प्रसिद्ध है। जिनके वंशमें भगवान्‌ने अवतार लिया।

राजा दिलीप गऊकी सेवा कैसे करते थे—गऊ बैठती है तो बैठते थे, उठती तो उठते थे, साथमें चलते थे, गऊको घास खिलाकर खुद अन्न खाते थे, गऊको जल पिलाकर जल पीते थे, गऊ उनके लिये ईश्वरके तुल्य हो गयी थी। जैसे कोई ईश्वरकी सेवा करे ऐसे गऊकी सेवा कर रहे थे। आखिरमें एक दिन ऐसा हुआ कि वनमें गऊके ऊपर सिंह आकर झपटा, गऊ चिल्लायी, राजा दौड़कर गये, देखा तो सिंह गऊके ऊपर आक्रमण कर रहा है। राजाने उस सिंहको मारनेके लिये धनुष-बाण उठाया, किंतु राजाका धनुष-बाण कुछ भी काम नहीं दिया, राजाने सोचा बाण नहीं चला, क्या बात है? फिर सिंहने कहा कि 'मैं शिवजीका गण हूँ, मुझे कोई नहीं मार सकता।' राजाने कहा कि 'महाराज! आप इस गऊको न मारकर मुझे मारें। आपको तो मांस ही चाहिये न? मुझे आप खा लें, गऊको छोड़ दें।' उसने कहा—'राजन्! तुम राजा होकर गऊके बदले अपनेको क्यों दे रहे हो? वसिष्ठको ऐसी-ऐसी कई गऊ आप दे सकते हैं। सोचें आप राजा हैं, आपके शरीरका कितना मूल्य है और इस गऊका कितना मूल्य है?' दिलीपने कहा कि 'आपका कहना ठीक है, किंतु गौकी रक्षा करना मेरा धर्म है, उसे बचाना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ। अपने प्राणोंको देकर भी गऊको बचाना चाहिये।' सिंह बोला—'ठीक है, तुम यदि इस प्रकार धर्मका पालन करते हो तो तुम सावधान हो जाओ। गऊको छोड़कर मैं तुम्हारे ऊपर आता हूँ।' यह कहकर जब सिंह झपटनेकी तैयारी करने लगा, तब राजा भगवान्‌के ध्यानमें मस्त हो गये। पर सिंह झपटता नहीं है। राजाने आँख खोलकर देखा कि सामने सिंह नहीं है, केवल गाय खड़ी है। गायने कहा—'राजा दिलीप! मैं ही सिंह बनकर तुम्हारी परीक्षा ले रही थी, मैं तुम्हारे ऊपर खुश हो गयी, तेरी इच्छा पूर्ण हो जायगी, तुम्हारे बहुत बलवान् लड़का पैदा होगा, जो संसारमें विख्यात होगा।'

इस दृष्टान्तपर आप सब ध्यान दें—राजा दिलीपने गऊके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे दी थी। ऐसी बहुत-सी कथा पुराणोंमें, शास्त्रोंमें आती है। यह सोच-समझकर सभीको गोसेवा एवं गोरक्षाका व्रत लेना चाहिये।

संसारमें सार क्या है ?

(स्वामी श्रीचिन्दानन्दजी महाराज 'सिहोरवाले')

शास्त्रमें एक वचन मिलता है—

यत् सारभूतं तदुपासनीयं
हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमिश्रात्॥

भाव यह है कि संसारमें जो सार वस्तु हो, मनुष्य उसीका सेवन करे, अर्थात् पुरुषार्थद्वारा सार वस्तुको प्राप्त करे और असार वस्तुओंमें न फँसे। दृष्टान्त देते हुए कहते हैं कि जैसे दूध और पानी मिलाकर हंसको दो तो वह साररूप दूधको ग्रहण करेगा और असार वस्तु पानीको छोड़ देगा, उसी प्रकार मनुष्यको भी करना चाहिये।

अतएव यदि सारको ग्रहण करना है तो संसारमें सार वस्तु क्या है—यह जान लेना चाहिये। जिस मनुष्यमें विवेक-बुद्धि जाग्रत् नहीं हुई होती, वह तो विषयभोगके साधनोंको ही साररूप मानता है, इस कारण सारे जीवनको इन साधनोंके जुटानेमें ही लगा देता है। भोगसे कभी तृप्ति नहीं होती, बल्कि उससे भोगतृष्णा दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है; परिणाम यह होता है कि मनुष्य मृत्युकी अन्तिम घड़ीतक विषय-चिन्तनमें ही लगा रहता है और उसके फलस्वरूप आसुर योनियोंको ही प्राप्त होता है। यह बात हुई उन मनुष्योंकी—

जो 'कामोपभोगपरम' हैं अर्थात् काम्य वस्तुओंको प्राप्त करके उनका भोग भोगनेमें ही जीवनको सार्थक समझते हैं। ऐसे मनुष्योंको शास्त्रोंमें पामर और विषयीकी संज्ञा दी गयी है।

परंतु जो मुमुक्षु पुरुष हैं, वे इस बातको जानते हैं कि भोग-पदार्थ दु:खयोनि और आगमापायी हैं, अत: उनसे कोई सच्चा और स्थायी सुख नहीं मिलता। इससे वे लोग विषयोंको विषवत् त्याग देते हैं और संसारमें साररूप क्या है—इसका विचार करते हैं। सारे संसारका सार खोजना तो एक बहुत व्यापक प्रश्न है; इसलिये पहले छोटे-छोटे परिचित उदाहरणोंको देखें, जिससे मूल प्रश्नका समझना सहज हो जाय।

एक आदमीके पास एक सोनेकी अँगूठी है। उस अँगूठीको निहाईपर रखकर उसपर हथौड़ा मारा जाय तो क्या होगा? अँगूठीका आकार नष्ट हो जायगा और हथौड़ेसे पीटा सोनेका टुकड़ा दीख पड़ेगा। वह सोना एक समय अँगूठीके रूपमें था, ऐसी केवल स्मृतिमात्र रह जायगी। अब उसको एक बर्तनमें रखकर भट्ठीपर चढ़ायेंगे तो वह अँगूठी गलकर एक छोटी सोनेकी गुटिका बन जायगी और तब यह स्मृति भी शेष नहीं रहेगी कि वह गुटिका पहले अँगूठीके रूपमें थी। इस सारे प्रयोगका सार इतना ही है कि अँगूठी जब उत्पन्न नहीं हुई थी, उस समय भी सोना तो था ही। पीछे सुनारने उस सोनेसे एक आकृति तैयार की और उस आकृतिका नाम 'अँगूठी' रखा। नाम तो आकृति बननेके बाद ही पड़ा। पीछे जब उस आकृतिको नष्ट कर दिया गया, तब उसका नाम भी नष्ट हो गया और सोना अवशेष रह गया। नरसी मेहताने अपने एक भजनमें यही बात इस प्रकार कही है—

'घाट घड़्या पछी नामरूप झूजवाँ, अन्ते तो हेम नुं हेम होय।' अर्थात् आकृति गढ़नेके बाद नाम-रूपका अस्तित्व होता है, फिर अन्तमें सोने-का-सोना ही रह जाता है। यही बात दूसरी तरह कहें तो कह सकते हैं कि पहले सोना था, पीछे उसने एक रूप धारण किया और उस रूपका नाम अँगूठी रखा गया। फिर सोनेने अपनी उस आकृतिको अपनेमें समेट लिया और इस प्रकार नाम-रूप दोनोंका नाश हो गया और सोना फिर अपने मूल स्वरूपमें आ गया।

अब अँगूठीके विषयपर फिर आइये। अँगूठीमेंसे सोना निकाल लें तो क्या बच रहेगा? यह हम पहले ही कह चुके हैं कि सोनेने ही नाम-रूप धारण किया था, इसलिये अँगूठीमेंसे सोना निकाल लेनेपर कुछ भी बाकी नहीं रह जाता; क्योंकि नाम और रूप दोनों ही

सोनेमें कल्पित थे।

परंतु अँगूठीमेंसे सोना प्रत्यक्षरूपमें निकाला नहीं जा सकता, अतएव इसको समझनेके लिये सूक्ष्म रीतिसे विचार करना पड़ता है। अत: इससे एक और स्थूल दृष्टान्त लीजिये।

एक मिट्टीका घड़ा लीजिये। वह घड़ा और कोई वस्तु ही नहीं है, केवल मिट्टीके द्वारा धारण की गयी एक विशेष आकृति है और उस आकृतिको मिट्टीकी दूसरी आकृतिसे पृथक् दिखलानेके लिये उसको 'घड़ा' नाममात्र दिया जाता है। यह घड़ा कच्चा है, अर्थात् इसकी आकृति अवाँमें पकायी नहीं गयी। अब पानीसे भरा एक बड़ा बर्तन लीजिये और इस घड़ेको उसमें डुबा दीजिये। एक-आध घण्टेके बाद देखिये तो वह घड़ा दिखायी नहीं पड़ेगा। घड़ेकी मिट्टी पानीमें गल गयी, इससे घड़ेकी आकृति नष्ट हो गयी और जब आकृति नष्ट हो गयी, तब 'घड़ा' नाम किसको दिया जाय? इसलिये घड़ेकी मिट्टी निकाल लीजिये तो नाम-रूप दोनोंका नाश हो जाता है और मिट्टी अवशेष रह जाती है और घड़ेकी आकृति बननेसे पूर्व मिट्टी तो थी ही। मध्यमें मिट्टीने एक आकार धारण किया, जिसको हमने 'घड़ा' नाम दिया। फिर पीछे उस घड़ेको पानीमें डालनेपर मिट्टी गल गयी और नाम-रूप नष्ट हो गये तथा मिट्टी बर्तनकी पेंदीमें बैठ गयी।

अब यहाँ भी हम घड़ेमेंसे मिट्टीको प्रत्यक्ष रूपमें नहीं ले सकते, इसलिये मिट्टी पानीमें गल गयी—यह बात बुद्धिके सहारे समझनी पड़ती है। अत: अब एक तीसरा दृष्टान्त लीजिये, जिसमें बुद्धिकी कुछ भी सहायता न लेनी पड़े और सारी बात प्रत्यक्ष समझमें आ जाय।

एक वस्त्रका टुकड़ा लीजिये। अब यह पता लगाइये कि वह किस प्रकार बना है। रूईसे सूत बना और सूतको बुननेसे वस्त्र बना। अब इस वस्त्रमेंसे एक-एक करके सूतके तारोंको निकालते जाइये। सब तारोंको निकाल लेंगे, तब क्या बाकी रहेगा? कुछ भी बाकी न रहेगा। रहेंगे तो वे सूतके तार ही रहेंगे और वस्त्रका कोई नाम-निशान भी न रहेगा। सूतके तारोंने एक साथ मिलकर जो वस्त्रका आकार धारण किया था, वह आकार तारोंके अलग-अलग हो जानेसे नष्ट हो गया। प्रकारान्तरसे कह सकते हैं कि वस्त्रके उत्पन्न होनेके पहले सूत था। उस सूतके तारोंको व्यवस्थित रीतिसे मिलानेसे वस्त्र बना और फिर उन तारोंको अलग-अलग कर देनेसे वस्त्रका नाश हो गया।

अब तीनों दृष्टान्तोंको साथ लेकर देखिये। अँगूठीमें मानो सोना साररूप था; क्योंकि अँगूठीका आकार और 'अँगूठी' नाम तो नाशवान् ही है, इस कारण वहाँ साररूप कुछ है तो वह सोना ही है। इसी प्रकार घड़ेके दृष्टान्तमें भी मिट्टी साररूप है; क्योंकि आकृति और उसका नाम तो नाशको प्राप्त होता है, पर मिट्टी ज्यों-की-त्यों रहती है। वस्त्रके दृष्टान्तमें नाम और रूप नाशको प्राप्त होते हैं, परंतु सूत तो ज्यों-का-त्यों रहता है। अतएव अँगूठीका आधार सोना है, घड़ेका आधार मिट्टी है और वस्त्रका आधार सूत है। अथवा अँगूठी सोनेके सिवा और कुछ नहीं है, घड़ा मिट्टीके सिवा और कुछ नहीं है और वस्त्र सूतके सिवा और कुछ नहीं है; क्योंकि उनकी उत्पत्ति सोने, मिट्टी और सूतसे ही क्रमश: होती है। जिससे जो वस्तु उत्पन्न होती है, उसको उसका उपादान कारण कहते हैं; अतएव अँगूठीका उपादान कारण सोना है, घड़ेका मिट्टी है और वस्त्रका सूत है और इस कारण उनमें साररूपमें सोना, मिट्टी और सूत है। नाम और रूप कल्पित होनेके कारण नष्ट हो जाते हैं। यहाँ एक ही बातको अनेक प्रकारसे बहुत बार कहा गया है, यह बोधकी दृढ़ताके लिये आवश्यक समझकर कहा गया है। इसमें पुनरुक्तिका दोष नहीं माना जाता। इसके समर्थनमें वेदान्तसूत्र कहता है—'**आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।**' अर्थात् उपदेशको हृदयमें दृढ़ होनेके लिये एक ही बात बारम्बार समझायी जाती है। वसिष्ठऋषिने भी श्रीभगवान् रघुनाथजीसे कहा है—

भूयो निपुणबोधाय शृणु किंचिद् रघूद्वह।
पुनः पुनर्यत् कथितं तदज्ञेऽप्यवतिष्ठते॥

'बोधकी विशेष दृढ़ताके लिये एक बार फिर कहता हूँ, सावधान होकर सुनो; क्योंकि एक ही बात अनेक प्रकारोंसे कही जाती है तो उससे मन्द बुद्धिवालेको भी बोध हो जाता है।'

हमने जिस बातको इतना विस्तारपूर्वक कहा है, उसीको श्रीगौडपादाचार्यने एक ही श्लोकमें समझाया है—

आदावन्ते च यन्नास्ति वर्तमानेऽपि तत्तथा।
वितथैः सदृशाः सन्तोऽवितथा इव लक्षिताः॥

भाव यह है कि नाम और रूप जैसे वस्तुकी उत्पत्तिके पूर्व नहीं होते, वैसे ही वस्तुका नाश होनेपर भी नहीं रहते। वे मध्यकालमें दीखते हैं, तो भी उनको मिथ्या ही जानो। 'अँगूठी' नाम और उसका रूप सुनारके द्वारा गढ़े जानेके पूर्व नहीं थे, बीचमें दिखायी दिये हैं और अँगूठीको गला देनेके बाद वे अदृश्य हो गये। इसलिये बीचमें जो अँगूठी नाम और उसकी आकृति दीख पड़ते हैं, उनको मिथ्या समझना चाहिये; क्योंकि उनमें स्वर्ण ही सत्य है। और भी स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं कि वस्तु मध्यमें सत्य-सी दीख पड़ती है, क्योंकि हम उसका उपयोग करते हैं; परंतु तात्त्विक दृष्टिसे वह सत्य नहीं बल्कि कल्पित होनेके कारण मिथ्या है, अर्थात् केवल व्यवहार-कालमें प्रतीत होती है, इसीलिये उसकी पारमार्थिक सत्ता नहीं है। दृष्टान्त देकर और भी समझाते हुए वे कहते हैं—

स्वप्नमाये यथा दृष्टे गन्धर्वनगरं यथा।
तथा विश्वमिदं दृष्टं वेदान्तेषु विचक्षणैः॥

अर्थात् स्वप्नके पदार्थ, इन्द्रजालका खेल, बादलोंमें दीखनेवाला गन्धर्वनगर तथा दूसरी अनेकों आकृतियाँ जैसे दीखती हैं, तथापि मिथ्या ही होती हैं, केवल देखने-मात्रको होती हैं; उसी प्रकार यह नाम-रूपात्मक विश्व-प्रपंच जो दीख पड़ता है, मिथ्या ही है—ऐसा तत्त्वज्ञानी समझते हैं।

इसी प्रकार सृष्टिके उत्पन्न होनेके पहले एक परमात्मा ही था। उसको एकसे अनेक रूप होकर रमण करनेकी इच्छा हुई और इसलिये उसने अपने ही भीतरसे इस संसारकी रचना की। '**तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत्**'— अर्थात् अपनेमेंसे जगत्को रचकर उसमें स्वयं जीवरूपसे प्रवेश किया। अतएव यह निश्चित हो गया कि परमात्मा इस सृष्टिका उपादान कारण है; क्योंकि हम पहले देख चुके हैं कि जिसमेंसे जो वस्तु उत्पन्न होती है, वह उसका उपादान-कारण होती है।

अब यहाँ यह विचारनेकी बात है कि अँगूठी बनानेमें सोना और सुनार—इन दोनोंकी जरूरत पड़ती है, घड़ा बनानेके लिये मिट्टी और कुम्भकार दोनों चाहिये तथा वस्त्रके लिये सूत और जुलाहा दोनों चाहिये। अतः जिससे जो वस्तु बनती है, वह उसका उपादान-कारण तथा जो बनाता है, वह निमित्त-कारण कहलाता है। यहाँ इस सृष्टिकी रचनामें यदि ईश्वरको उपादान-कारण मानें तो फिर निमित्त-कारण क्या है? उसका भी पता लगाना चाहिये। इसका स्पष्टीकरण यह है कि ईश्वर स्वयं ही उपादान-कारण और निमित्त-कारण दोनों है। जैसे मकड़ी अपने शरीरमेंसे लार निकालकर जाला बनाती है, अतएव उसका निमित्त और उपादान दोनों कारण मकड़ी ही होती है, उसी प्रकार ईश्वर भी जगत्का अभिन्ननिमित्तोपादान कारण है। अर्थात् उपादान भी स्वयं ही है और उपादानमेंसे सृष्टि रचनेवाला भी वह स्वयं ही है।

हम पहले सिद्ध कर चुके हैं कि किसी भी वस्तुमें साररूप तो उसका उपादान-कारण ही होता है, उपादान-कारणसे कार्यकी भिन्न सत्ता नहीं होती। जैसे अँगूठीमें सोना, घड़ेमें मिट्टी तथा वस्त्रमें सूत ही सार है, वैसे ही इस संसारमें साररूप इसका उपादान-कारण ही होना चाहिये और वह है ईश्वर या परमात्मा। जैसे वस्तुमेंसे उपादान निकाल लेनेपर कुछ भी शेष नहीं रहता, उसी प्रकार संसारमेंसे यदि ईश्वरको हटा दिया जाय तो संसार नहीं रह सकता।

अब ईश्वर ही जगत्‌का उपादान-कारण है, इसका प्रमाण देखिये। गीतामें श्रीभगवान् कहते हैं—

'मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना।'

अर्थात् इस समस्त जगत्‌में मैं अव्यक्तरूपसे व्याप्त हूँ। जैसे अँगूठीमें सोना अथवा घड़ेमें मिट्टी व्याप्त होकर रहती है, वैसे ही ईश्वर जगत्‌में व्याप्त रहता है। यहाँ कदाचित् अर्जुन प्रश्न करें कि 'महाराज! आप तो रथमें यहाँ मेरे सामने बैठे हैं और फिर कहते हैं कि मैं सारे जगत्‌में व्याप्त हो रहा हूँ;—यह कैसे हो सकता है?' इसीलिये भगवान् पहलेसे ही कह रहे हैं—'**मया अव्यक्तमूर्तिना।**' मैं इस अवतार-स्वरूपसे तो तुम्हारा रथ हाँकता हूँ—यह ठीक है; परंतु मेरा जो मूल सर्वव्यापक स्वरूप है, जो इन्द्रियोंसे अगोचर है, उस स्वरूपसे मैं सर्व जगत्‌में व्याप्त हो रहा हूँ।

फिर दूसरे प्रसंगमें श्रीभगवान् कहते हैं—

'मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनञ्जय।'

अर्थात् हे अर्जुन! जैसे अँगूठी सोनेसे भिन्न कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार मुझसे भिन्न इस संसारमें कोई पदार्थ नहीं है। अर्थात् मैं ही इस जगत्‌रूपमें दृष्टिगोचर हो रहा हूँ। इस जगत्‌का उपादान-कारण मैं ही हूँ। इसलिये मेरे सिवा जगत् दूसरा कुछ नहीं है।

ब्राह्मण लोग प्रतिदिन भगवान् शंकरकी पूजा करके आरती उतारते समय गाते हैं—

कर्पूरगौरं करुणावतारं
संसारसारं भुजगेन्द्रहारम्।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे
भवं भवानीसहितं नमामि॥

यहाँ शंकरजीका एक विशेषण 'संसारसार' भी है। अर्थात् इस संसारमें कुछ साररूप है तो वह एक ईश्वर ही है; क्योंकि उसके सिवा जगत् कोई वस्तु नहीं। अब इस साररूप वस्तुको खोजें कहाँ? ऐसा किसी भक्तके मनमें प्रश्न हो तो कहते हैं—'**सदा वसन्तं हृदयारविन्दे।**' अर्थात् प्राणीमात्रके हृदयकमलमें उनका नित्य निवास है। इसलिये ईश्वरको खोजनेके लिये कहीं बाहर दौड़नेकी जरूरत नहीं। हृदयको शुद्ध करनेसे वहीं उनका दर्शन हो जायगा।

श्रीअष्टावक्रमुनि कहते हैं—

यथैवादर्शमध्यस्थे रूपेऽन्तः परितस्तु सः।
तथैवास्मिन् शरीरेऽन्तः परितः परमेश्वरः॥

जिस प्रकार दर्पणमें प्रतिबिम्बित हुए रूपके भीतर और बाहर चारों ओर दर्पणका काच ही रहता है, उसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं होता, इसी प्रकार इस शरीरमें भी, इस जगत्‌में भी अन्दर और बाहर, चारों ओर एकमात्र परमेश्वर ही है, उसके सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है। इस प्रकार ईश्वर सर्वव्यापक है, अतएव वह कहीं नहीं है—यह कहना ही नहीं बनता। स्वर्ण जैसे अँगूठीमें है, वैसे ही ईश्वर जगत्‌में है। इस कारण यदि स्वर्णके बिना अँगूठीका अस्तित्व रह सकता हो तो ईश्वरके बिना जगत्‌का भी अस्तित्व रह सकता है।

ऊपर जो बात श्रीअष्टावक्रमुनिने सुन्दर दृष्टान्तके द्वारा समझायी है, उसी प्रसंगको श्रीवसिष्ठऋषिने एक नाटकके रूपकसे श्रीरामचन्द्रजीको समझाया है; उसका उल्लेख करके निबन्ध समाप्त करूँगा।

अस्मिन् विकारवलिते नियतेर्विलासे
संसारनाम्नि चिरनाटकनाट्यसारे।
साक्षी सदोदितवपुः परमेश्वरोऽयं
एकः स्थितो न च तया न च तेन भिन्नः॥

अनेकों विकारोंसे भरे हुए, नियतिरूपी नटीके विलासोंसे युक्त इस संसार नामक अनादि महानाटकमें सर्वदा प्रकाशमान यह प्रत्यगात्मारूप एक राजा ही देखनेवाला है। वस्तुतः देखनेमें यह राजा नटीसे तथा नाटकसे भिन्न नहीं है। द्रष्टा पुरुष दर्शन और दृश्यसे अभिन्न ही है।

इसलिये इस संसारमें कोई साररूप है तो वह एक परमेश्वर है, दूसरा कुछ नहीं। जो दिखलायी देता है, वह तो केवल दिखावामात्र, दृश्यमात्र है।

भगवान्‌में मन कैसे लगे ?

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत्॥

(गीता १५।५)

अविनाशी परमपदको कौन प्राप्त करता है, यह भगवान् उपर्युक्त श्लोकमें बताते हैं। निर्मानमोहा—जो मान-मोहसे रहित हो। जितसंगदोषा—जिसने आसक्तिके दोषको जीत लिया हो। जिसमें विषयोंकी आसक्ति न हो। विषयासक्ति जहाँपर है, वहींपर बन्धन है। यही आसक्ति भगवान्‌में हो जाय तो उसका नाम प्रेम है और यही आसक्ति विषयोंमें हो जाय तो उसका नाम मोह है। जबतक आसक्ति विषयोंमें रहती है तबतक कामना पैदा होती ही रहती है और जबतक कामना होती रहती है तबतक कामनासे होनेवाले जो दोष हैं, वे सब भी बने रहते हैं। इसलिये विषयोंके बदलेमें भगवान्‌में आसक्ति बढ़ाये। कहींपर भी आसक्ति रहे नहीं, संसारकी सत्ता ब्रह्मकी सत्तामें विलीन हो जाय। यदि आसक्ति रहे तो केवल भगवान्‌के चरणारविन्दमें, भगवान्‌के रूप, गुण, यश, कीर्ति और भगवान्‌के सौन्दर्य-माधुर्यमें रहे। तब यह आसक्ति विषयासक्तिका नाश कर देती है। विषयासक्ति और भगवदासक्तिमें बड़ा अन्तर है। विषयासक्ति पग-पगपर मनको विषयोंकी खोजमें ही लगाये रहती है। उसके द्वारा रात-दिन और स्वप्नमें भी विषयोंका ही चिन्तन होता है। इन दोनोंमें अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है—विषय-चिन्तनसे आसक्ति बढ़ती है और विषयासक्तिसे विषय-चिन्तन बढ़ता है और इसका कोई अन्त नहीं है। प्रकृतिके विस्तारका कोई अन्त नहीं है। इसलिये विषयोंकी प्राप्तिसे विषय-कामना छूट जाय ऐसा नहीं होता है; क्योंकि जितना विषयोंका प्राप्त होना है, उतना ही अधिक विषयोंकी इच्छा होना है। इनमें कहीं भी तृप्ति नहीं होती है।

जो चीज अनित्य है, अपूर्ण है और परिवर्तनशील है, उससे कहीं भी, किसीको भी आत्मतृप्ति नहीं होती है। संतोष नहीं होता है; क्योंकि वह अपूर्णता निरन्तर सामने रहती है, अनित्यता निरन्तर सामने रहती है। जो वस्तु मिली है, वह अपूर्ण है और यह हमेशा रहेगी नहीं तथा वह मनोनुकूल मिलती नहीं है। इसलिये विषयासक्ति निरन्तर ही चित्तको विषयोंमें लगाये रहती है। विषयासक्तिसे कामना पैदा होती है। कामनासे अगले सारे दोष पैदा होते हैं। इसलिये विषयोंकी आसक्तिपर जबतक विजय नहीं प्राप्त होती है, तबतक भगवान्‌में आसक्ति नहीं होती है और भगवान्‌में आसक्ति हुए बिना विषयासक्ति जाती नहीं है।

भगवान्‌में आसक्ति करनेका, भगवान्‌में प्रीति करनेका, भगवान्‌में चित्त किसी प्रकारसे जाकर जुड़ जाय, भगवान्‌में फँस जाय। इस प्रकारकी चेष्टाका नाम साधना है। भगवान्‌की लीलाओंके, गुणोंके गानसे उनमें चित्त रमता है। भगवान्‌के नामसे चित्तशुद्धि होनेपर चित्त भगवान्‌में रमता है। भगवान्‌के लिये कामना छोड़कर सेवाभावसे कर्म करनेपर चित्त भगवान्‌में लगता है। भगवान्‌के परम तत्त्वका आभास मिल जानेपर चित्त भगवान्‌में रमता है। ये कई उपाय हैं। जिस किसी भी उपायसे चित्त भगवान्‌में रम जाय और जगत्‌से हट जाय यह चेष्टा करनी है।

जिनका जगत्‌से चित्त हटा, जगत्‌के पदार्थोंमें चित्त नहीं लगता, नहीं फँसता है, ऐसे जो संगरहित लोग हैं—वे दिव्य अविनाशी पदको प्राप्त होते हैं। अध्यात्मनित्या—जिसका मन नित्य-नित्य भगवान्‌में लगा रहे। ऐसा होता है कि जो वस्तु प्रिय होती है, उसमें मन लगता है अथवा जो वस्तु आवश्यक होती है, उसमें मन लगता है या जहाँ भय होता है, वहाँ मन लगता है। तीन तरहसे मन लगता है—भयसे, आवश्यकतासे और प्रीतिसे। इनमें उत्तरोत्तर उत्तम है। कंसको भय हुआ। उसे रात-दिन

भगवान् श्रीकृष्णसे आशंका हो गयी कि अभी आये और अभी मार देंगे तो वह सोते-सोते भी जाग उठता था और दौड़ने लगता था कि आ गये। इसलिये उसका मन निरन्तर भगवान्में लगा रहता था। आवश्यकतासे मन लगता है जैसे अगर प्यास लग गयी तो जलकी स्मृति करानी नहीं पड़ती है। प्यास अपने-आप स्मृति कराये रखती है। भूलनेकी चेष्टा करनेपर भी वह भूल नहीं सकता; क्योंकि प्यासके कारण मन व्याकुल है। इसलिये आवश्यकता होनेपर स्मृति रहती है। और तीसरी बात है प्रीति। जो सबसे उत्तम है। प्रीति हो जानेपर वह वस्तु भुलायी नहीं जाती है। हमलोग जो कहते हैं कि अमुकसे हमारी प्रीति है, भगवान्से प्रेम है—यह वास्तविक नहीं है। जिसमें वास्तविक प्रेम होता है, वह भुलाया नहीं जाता है। अनजानमें भी उसकी स्मृति बनी रहती है। वह याद करनेके लिये करता हो ऐसा नहीं होता है। भगवान्को याद रखनेके लिये याद करनेका अभ्यास करें, ऐसा प्रीतिमें नहीं होता है। स्वाभाविक ही उनका मन वहाँ लगा रहता है और जब मनकी तरफ देखता है तो पता चला कि मन तो वहाँ लगा है। दूसरी चीजका ध्यान करने लगता है, पढ़ता है, लिखता है तो लगता है मन तो वहाँ गया है, मन यहाँ है ही नहीं। जहाँ किसी वस्तुमें प्रीति होती है तो वहाँ मन अपने-आप लगता है। प्रीति पवित्र होती है। प्रीतिमें वस्तुको प्राप्त करनेकी अपेक्षा वह प्रीति अधिक महत्त्वकी वस्तु होती है।

यह समझनेकी बात है कि जो प्रीति या प्रेम किसी वस्तुको प्राप्त कराकर सुखी कर दे, वह वास्तविक प्रीति नहीं है; क्योंकि जो वस्तुकी प्राप्तिसे सुख हो गया तो वह प्रीति उस रूपमें नहीं रही। वस्तु प्राप्त हो गयी। वस्तुकी प्राप्तिके लिये होनेवाली प्रीति वस्तुतक सीमित है। वस्तुसे आगे नहीं है, परंतु जो वास्तविक प्रीति है, वह नित्य नवायमान रहती है। प्रतिक्षण वर्द्धमान रहती है; क्योंकि प्रीतिका यह स्वभाव ही है कि किसी वस्तुसे उसका विराम नहीं होता है। प्रीति रुकती नहीं है और वह किसी वस्तुको चाहती नहीं है।

अरबीमें जो लैला-मजनूका इतिहास है, उसे गन्दी मिसाल मानते हैं, परंतु उसको देखा जाय तो ऐसी बात नहीं है। मैं एक दिन उसे देख रहा था तो मुझे मालूम हुआ कि श्रीराधाजी तो वहाँ मजनू बने हैं और श्रीकृष्ण ही लैला हैं। मजनू गौर वर्ण थे और लैला बड़ी साँवली थी। ऐसा वर्णन आता है। लैला राजपुत्री थी और मजनू एक बड़े गरीब घरका लड़का था। मजनू कभी मिलना नहीं चाहता था, मिला नहीं और लैला सुनती थी, परंतु कभी मिलनेकी चेष्टा नहीं की। उनका प्रेम पवित्र तथा निरुत्तर रहा। अन्तिम बात जो बहुत सुन्दर है वह है मजनूकी मृत्यु हो गयी तो उसके आसपासके लोग उसे कब्रगाहमें ले गये और वहाँ उसे दफना दिया गया। वह कोई राजाका लड़का तो था नहीं। यह बात जब लैलाको मालूम हुई, लैला अपने पिताकी अत्यन्त प्रिय पुत्री थी। वह इतनी प्रिय थी कि उसकी कही हुई कोई बात उसके पिता टालते नहीं थे। वह जो कह दे, वे स्वीकार करते। जब लैलाने यह बात सुनी कि मजनूकी मृत्यु हो गयी और उसे दफना दिया गया तो उसने पिताको कहलाया कि मैं एकबार मजनूकी कब्र देखना चाहती हूँ। पिताने स्वीकार कर लिया, परंतु कहा—तुम राजपुत्री हो, इसलिये वहाँ अकेले नहीं जाओगी। मैं, तुम्हारी माँ, दीवान, मन्त्रिमण्डल और सेना भी साथ जायगी। इसे लैलाने स्वीकार कर लिया और कहा कि साथमें उन गरीबोंकी टोली भी जायगी। तब आगे-आगे गरीबोंका दल चला, उनके पीछे लैला चली, उसके बाद लैलाके माता-पिता फिर सारा राजमण्डल, फिर सेना चली। वहाँ पहुँचकर लैला मजनूकी कब्रगाहके पास खड़ी हो गयी। खड़ी होकर बोली—ऐ खुदा! यदि कोई खुदा है तो मैं यह कहती हूँ कि यदि मेरे मनमें मजनूको छोड़कर दूसरे किसीकी कल्पना न आयी हो और मैंने कभी किसी प्रकारका भोग-सुख न चाहा हो तो मजनूकी कब्र फट जाय और मुझको अपनेमें ले ले। फिर सबके देखते-

देखते कब्र फट गयी और लैला मजनूके शवसे लिपट गयी। कब्र बन्द हो गयी और आकाशवाणी हुई कि यदि इस कब्रको कोई खोदेगा तो वह तत्काल नष्ट हो जायगा, मारा जायगा। सभी लोग वहाँसे लौट आये। यह प्रीति है। जहाँ प्रीतिमें चाह है और जहाँ किसी वस्तुको प्राप्त करके प्रीति शमित हो जाती है, दब जाती है, उसमें समा जाती है, रुक जाती है अथवा मिट जाती है—वह प्रीति नहीं है। इसीलिये भगवत्प्रेम इतना ऊँचा है। इसीलिये इसको भक्ति-सम्प्रदायके दार्शनिकोंने, भावुकोंने पंचम पुरुषार्थ माना है। जहाँपर मोक्षकी इच्छा भी मिट जाती है; क्योंकि मोक्षकी इच्छामें भी अपने बन्धनका भान है और बन्धनसे छुटकारेकी इच्छा है। अगर छुटकारेकी इच्छा न हो तो मोक्षकी इच्छाका क्या अर्थ है। मोक्ष अर्थात् छुटकारा, छूट जाना। बन्धनका भान हुए बिना मुक्तिकी इच्छा नहीं होती है और बन्धनका भान किसी व्यक्तिको होता है। उसे बन्धनमें दु:ख है तभी वह छुटकारा चाहता है। मुक्तिकी इच्छामें अपने दु:खसे छुटकारा पानेकी इच्छा है। चाहे वह आत्यन्तिक दु:ख ही हो। ऐसा कहते हैं कि मुक्तिप्राप्तिसे सारे दु:खोंका सदाके लिये अवसान हो जाता है। इसीलिये मुक्ति चाहनेवाला यह चाहता है कि मेरे सारे दु:खोंका सदाके लिये अवसान हो जाय। उसकी बड़ी भारी अहंके मंगलकी कामना है। इससे भी ऊँचा जहाँ अहम् सर्वथा दूसरे किसीके सुखमें विलीन हो जाय। दूसरे किसीके सुखका स्वरूप बन जाय और अपनी स्थिति ही न रहे। इसका नाम प्रेम है।

जहाँ हम छोटी-छोटी कामनाओंको, गन्दे कामोंको प्रेमका रूप समझ लेते हैं—यह तो हमारे समझनेकी गलती है। वह तो इतना ऊँचा है कि जहाँतक बहुतोंकी तो दृष्टि ही नहीं जाती है। इस प्रकारकी प्रीति जहाँ होती है वह तो चरम अवस्था है, परंतु इस प्रीतिका अभ्यास जहाँसे आरम्भ होता है, वहाँपर स्मृति नित्य बन जाती है।

तीसरी बात है, प्रीतिसे स्मृति होती है। जहाँपर नि:स्वार्थ प्रीतिका प्रारम्भ होता है, वहींपर स्मृति अखण्ड होने लगती है। जहाँ-जहाँ प्रीतिमें कोई स्वार्थ है, वहाँ-वहाँपर तो वह स्वार्थ आकरके प्रीतिको भुलाता है। स्वार्थ आ जाता है कि इस प्रीतिसे अमुक चीज प्राप्त करनी है। चूँकि चीज प्राप्त करनी है इसलिये जितने समय वह चीज याद रहेगी, उतने समयतक प्रीति नहीं रहेगी। वह वस्तु चाहे भगवान् ही हो। भगवान्‌को भी प्राप्त करनेकी इच्छासे भी बढ़कर भगवान्‌से प्रीतिकी इच्छा है। भगवान्‌की प्राप्ति तो प्रीतिवालेको निरन्तर है ही; क्योंकि उसके मनसे भगवान् कभी जा नहीं सकते हैं। भगवान्‌में यह शक्ति नहीं है कि वह प्रेमी हृदयका परित्याग करके कहीं जा सकें। प्रेमी जो निष्काम, निश्छल हृदय है, वह भगवान्‌को नित्य बाँधे रखता है। भगवान् वहाँसे जाते हैं, जब दूसरा कोई आ जाता है। कोई स्वार्थ आ गया, कोई काम आ गया, कोई वस्तु आ गयी तो वहाँसे भगवान् निकल जाते हैं और जहाँ निष्कपट, निश्छल और निर्हेतुक प्रेम है, वहाँसे भगवान् जा नहीं सकते हैं। भगवान् वहाँ बँध जाते हैं। भगवान्‌को बाँधनेकी कोई भी यदि डोरी है, साधना है तो केवल प्रीतिकी, प्रेमकी डोरी है और किसीसे भी भगवान् बँधते नहीं हैं।

ज्ञानमें भगवान् उस ज्ञानके जाननेवालेको लुप्त कर देते हैं, इसलिये बँधनेका सवाल नहीं रहता है और जहाँ अज्ञान है, वहाँ कोई भगवान्‌को बाँधना चाहता नहीं है। प्रेममें भगवान् रहते हैं और ज्ञानपूर्वक रहते हैं। भगवान् वहाँसे कहीं जा नहीं सकते हैं। इसलिये भगवान्‌की प्राप्तिकी अपेक्षा भी भगवान्‌की प्रीतिका प्रेमियोंकी दृष्टिमें अधिक महत्त्व है। वे प्राप्त होनेका विरोध नहीं करते हैं और प्राप्त होनेमें उन्हें बड़ी प्रसन्नता है। वे चाहते भी हैं, परंतु प्राप्त होनेपर यदि भगवान्‌में प्रीति कहीं किसी भी प्रकारसे कम होती हो तो वह प्रेमी चाहते हैं कि भगवान् चाहे न मिलें, परंतु हमारी यह प्रीति

निरन्तर अक्षुण्ण बनी रहे। यह कभी घटे नहीं। इस प्रीतिकी जहाँ प्रारम्भिक स्थिति है निष्काम, अहैतुक प्रीतिकी इसमें स्मृतिका लोप नहीं होता है। जहाँ इस प्रीतिके मार्गपर आये वहाँ विस्मरण नहीं होगा।

जगत् इस बातको जानता नहीं है, इसलिये इस प्रकारके प्रेमियोंके हृदयको जगत् समझ नहीं सकता है। जगत्की आँखें उन आँखोंसे जगत्को देख नहीं सकती हैं। भगवान्को देख नहीं सकती हैं। गोपीकी आँख, राधाकी आँख जिस प्रकार भगवान्को देखती है, उस प्रकारकी आँख तो है नहीं और उस प्रकारकी आँखको समझनेकी शक्ति भी हममें नहीं है। इसलिये हम अपनी आँखोंसे राधाकी आँखको मिलाकर देखते हैं तो हमें वह ठीक नहीं मालूम देती है; क्योंकि दोष तो हमारी आँखोंमें ही है।

परम प्रीति जहाँ जाग्रत् हो जाती है, वहाँ कामना नहीं रहती है। परम प्रीति और कामनामें बड़ा वैर है। प्रीति और कामना दोनों साथ नहीं रह सकती हैं। सर्वथा परित्याग, पूर्ण त्यागकी नींवपर प्रीतिका महल खड़ा होता है। जरा भी जहाँ त्यागकी कमी है, वहाँ वह महल ढह जायगा। प्रेमका महल काममें रहता नहीं है। जहाँपर प्रेम है, वास्तविक प्रीति है, वहाँपर स्मृति बराबर बनी रहती है। भगवान्की स्मृतिके लिये, नित्य भगवान्में मन लगा रहनेके लिये अध्यात्मनित्या बने। मन नित्य भगवान्में लगा रहे इसके लिये आवश्यकता है प्रीतिकी। अभ्याससे भी मन लगता है परंतु अभ्यास जबतक प्रीति उत्पन्न नहीं करता है तबतक प्रीतिवाली कोई चीज आ जानेपर अभ्यास छूट जाता है। श्रद्धापूर्वक दीर्घ अभ्यास होनेपर अभ्यास प्रीति उत्पन्न कर देता है।

विमल पन्थ

(श्रीमृदुलमोहनजी अवधिया)

राजाओं के मुकुटमणि, राजेश्वर श्रीराम।
अखिल लोक उनको करे, शत शत कोटि प्रणाम॥
श्री रघुवीर समर्थ हैं, सर्वजयी अविराम।
वन्दनीय सेवक हुए, पवनपुत्र बलधाम॥

श्रीहरि के जो भक्त हैं, शीलवन्त-गुणवन्त।
अपने सहज स्वरूप में, लीन करें श्रीकन्त॥
सरल-विमल मन रामजी, करते प्रेम प्रदान।
उनके कृपा-प्रसाद से, शठ बनते मतिमान॥

करतलगत आशीष से, हरि हरते सन्ताप।
दोष दुःख द्रुत भागते, जीव बनें निष्पाप॥
उल्लंघन जो भी करें, हरि के वचन अमोघ।
जन्म-जन्म उनको सतत, त्रासद हैं अघ ओघ॥

जो बनते हैं स्वयंभू, अहमिति के अवतार।
जन्म बिताते हैं विपुल, पा न सकें उद्धार॥
नास्तिक बन बढ़ते रहें, उनका पतन महान्।
विधिवश मति भ्रम में फँसें, कैसे हो कल्याण?

भजन हीन कल्याण की, आशा है निर्मूल।
बिना ध्यान रघुनाथ में, दुर्लभ पद की धूल॥
जीवन होवे धन्य तब, जागे पद-अनुरक्ति।
रहे न कोई कामना, भाये मन को भक्ति॥

अपेक्षा है विषादकी जननी

(डॉ० श्रीशैलजाजी)

श्रीमद्भागवतपुराणका कथन है—'**आशा हि परमं दुःखं नैराश्यं परमं सुखम्**' अर्थात् आशा यानी अपेक्षा मानव-जीवनका सबसे बड़ा दुःख है और निराशा यानी जगत्से उदासीनता या अनपेक्षता सबसे बड़ा सुख है। मनुष्य जीवनभर विभिन्न प्रकारकी अपेक्षाओंके सागरमें डूबता-उतराता रहता है। यह उसकी स्वाभाविक वृत्ति है; क्योंकि इसके बिना उसके जीवनकी नाव चल नहीं सकती। जब हम किसीके काम आते हैं तो प्राकृतिकरूपसे अपेक्षा होती है कि वह भी आवश्यकताके समय हमारी सहायता करे। यदि अपेक्षाके अनुरूप व्यक्तिका इच्छित कार्य हो जाता है तो उसे विशेष प्रसन्नता नहीं होती; क्योंकि वह सोचता है कि ऐसा तो होना ही था। लेकिन जब अपेक्षाके अनुसार कार्य नहीं होता है तो उसे निराशा होती है और वह दुःखके सागरमें डूब जाता है। कई बार तो वह इतना दुखी हो जाता है कि वह विषादसे उबर ही नहीं पाता। कभी-कभी तो वह अवसादग्रस्त होकर अपनी जीवन-लीला भी समाप्त कर बैठता है। अपेक्षाके पूर्ण न होनेके दुःखसे उपजी यह स्थिति विषादकी पराकाष्ठा है।

दैनिक जीवनमें हम देखते हैं कि माँ-बाप अक्सर अपने पुत्रसे कुछ अपेक्षाएँ पाल लेते हैं। वे सोचते हैं कि बेटा हमारे बुढ़ापेका सम्बल बनेगा, निःशक्त हाथोंकी लाठी बनकर जीवनरूपी नावको सुखपूर्वक किनारे लगायेगा। लेकिन जब वही बेटा माँ-बापकी आशाओंपर खरा नहीं उतरता तो उन्हें घोर निराशा होती है। उनकी उम्मीदोंपर पानी फिर जाता है। कई बार तो वे स्वयंको कोसने भी लग जाते हैं। वे भूल जाते हैं कि उन्होंने अपनी संतानके लिये जो कुछ भी किया; वह ममता, वात्सल्य, प्रेमके वशीभूत होकर किया अथवा अपना कर्तव्य समझकर किया। बदलेमें किसी प्रकारके उपकारकी आशा या अपेक्षासे नहीं किया। माता-पिता एवं संतानके मध्य जो रिश्ता है, वह किसी व्यवसायकी तरह संचालित नहीं होता है। जब हम अपेक्षाके धरातलपर उतर जाते हैं तो यह सम्बन्ध व्यापारकी श्रेणीमें आ जाता है। कहनेका तात्पर्य यह नहीं कि संतानका अपने माता-पिताके प्रति कोई कर्तव्य नहीं है। वृद्ध माता-पिताकी सेवा-शुश्रूषा करना शास्त्रोक्त कर्तव्य है। हम बात यहाँ अपेक्षाकी कर रहे हैं। यदि अपेक्षा नहीं की जाती तो दुःख भी नहीं होता। यदि सामनेवाले व्यक्तिके द्वारा कर्तव्यपालन न करनेपर हमें दुःख पहुँचता है तो यह स्थिति सुखद नहीं कही जा सकती।

प्रेम जीवनका आधार होता है। अपेक्षाभाव जीवनको व्यापार बना देता है। केवल देनेपर आधारित है, उसमें लेना कुछ नहीं होता, जबकि व्यापारमें लेना-देना दोनों ही विद्यमान रहते हैं। माँ-बाप भी अपनी संतानसे अपेक्षा करने लगते हैं। पति-पत्नी भी बिना अपेक्षाके साथ चल नहीं पाते। जीवनस्तर इसी अपेक्षाके कारण मानवीय धरातलसे गिरकर पशुवृत्तियोंके हवाले हो जाता है। ये वृत्तियाँ अलग-अलग परिस्थितियोंमें अलग-अलग स्वरूपोंमें प्रकट होती रहती हैं, जो मानसिक हिंसाका एक नया संसार रच देती हैं। फलस्वरूप जीवनसे सुख विदा हो जाता है। अपेक्षाकी शक्तिका अनुमान इसी बातसे लगाया जा सकता है कि यह व्यक्तिको सही मायनेमें मानव बनने ही नहीं देती। उसकी इच्छाशक्ति सदैव हार बैठती है। अपेक्षा तो व्यक्तिको व्यष्टि भावसे बाहर निकलने ही नहीं देती, जिससे मानवदेहका उपयोग समष्टिके लिये हो नहीं पाता। उसका अहंकार अकारण ही दूसरेको तुच्छ मान बैठता है। अपेक्षामें तो कारण भी नहीं होता। सम्पूर्ण सुखों और सुविधाओंके मध्य बैठा हुआ व्यक्ति भी सुखी रहनेकी अपेक्षा दुःखोंसे घिरा रहता है; क्योंकि अपूर्ण रही अपेक्षा उसे सुखका अहसास करने ही नहीं देती।

महापुरुषोंका कथन है कि अपेक्षा एक काल्पनिक विचार है। बिना किसी यथार्थीय विचारके व्यक्ति अपने मनमें कुछ सोच लेता है। यह स्वप्न देख लेने-जैसा कार्य है। हम अपने मनमें ही अपेक्षा पालकर दुखी हो रहे हैं। वस्तुतः यह दुःख वास्तविक नहीं है, मात्र कल्पनापर आधारित है।

हम जीवनमें इस अपेक्षाका विस्तार भी देख सकते हैं। जिस व्यक्तिसे हम नाराज होकर दुखी हुए, उसके प्रति घृणाका भाव भी पैदा हो सकता है। वह हमें स्वप्नमें भी बुरे व्यक्तिके रूपमें दिखायी पड़ सकता है। जैसे-जैसे हमारे भीतरकी पाशविक वृत्तियाँ हमारे विचारोंसे जुड़ेंगी, वैसा-वैसा स्वरूप हमारी प्रतिक्रियाओंका उभरता चला जायगा। पुनर्जन्मके सिद्धान्तके आधारपर हमें इस तथ्यको तो स्वीकार कर ही लेना चाहिये कि मनुष्य शरीरमें आनेसे पहले हम अनेक बार पशुरूपमें भी जन्म ले चुके हैं। इसीलिये हमारे पूर्वजन्मोंके संस्कार भी हमारे साथ इस जन्ममें भी रहेंगे। बस! निमित्त पानेकी देर है कि वे मुखर हो उठेंगे। अपेक्षाका अर्थ ही अप+ईक्षा अर्थात् कुछ बुरा, खोटा देखना, विचारना ही है। आक्रामकता, हिंसा, क्रोध-जैसे कृत्य ही तो इसमें प्रमुख रूपसे छाये रहते हैं। इनके सामने हमारा मन तो बहुत कमजोर होता है। यदि किसी आवेशको हम दबा भी लें तो फिर फूट पड़नेको तैयार रहता है अर्थात् और भी तीव्र गतिसे अभिव्यक्त होता है, जो शरीरमें भयंकर पीड़ा भी उत्पन्न कर सकता है। विचार करके देखा जाय तो अपेक्षा मूलतः संकुचनका विकास ही है। यह मायाका क्षेत्र है। मन जैसे-जैसे छोटा होता है, वैसे-वैसे दुखी भी होता है। नकारात्मक मानसिकता घर करने लगती है और जीवनके प्रति एक भ्रान्त दृष्टि विकसित हो जाती है।

अपेक्षा भाव ही परिग्रहका कारण बनता है। यह ईर्ष्या, लोभ, चोरीका मार्ग प्रशस्त करता है। व्यक्तिका मायाभाव चेतनसे अचेतनमें प्रवेश करता है। दबी हुई समस्त वृत्तियाँ भी अचेतन मनमें संग्रहीत रहती हैं। यह अचेतन मन ही जीवनमें भ्रमजालका निर्माण करके यथार्थको ढक लेता है। माया और मित्रता दो विरोधी तत्त्व हैं। व्यक्ति मित्रतासे हटकर वस्तुओंकी ओर आकर्षित होता है। कामना और अपेक्षा दोनोंकी दिशा एक-सी होती है। परिणाम-स्वरूप जीवनमें नकारात्मक मानसिकता विकसित हो जाती है, जो अन्ततः हमारे दुःखोंका कारण बनती है।

अपेक्षा एक ऐसा विचार है, जिससे पूरी मानवजाति ग्रस्त है। हर युगमें व्यक्ति अपनोंसे अपेक्षा करता रहा है। यह बात दीगर है कि अपेक्षा पूर्ण न होनेके कारण उसे दुखी होना पड़ा है। विचार करें जब मन्त्री सुमन्त (सारथी) भगवान् राम, लक्ष्मण और सीताजीको छोड़नेके लिये वनमें गये तो राजा दशरथजीने अपेक्षा की थी कि कुछ दिनोंके वनप्रवासके बाद वे तीनों वापस अयोध्या लौट आयेंगे। यदि राम वचनके कारण नहीं भी लौटे तो भी लक्ष्मण और जानकी तो अवश्य आ जायँगे; क्योंकि वे वनवासके लिये बाध्य नहीं हैं। राजा दशरथने सुमन्तसे उनको वापस लानेके लिये कहा भी था, लेकिन तीनोंमेंसे जब कोई भी नहीं लौटा तो राजा घोर निराशासे घिर गये और उनके वियोगमें अपने प्राणतक त्याग दिये। इसी प्रकार पाँचों पाण्डव जब द्रौपदीके साथ वनवासके बाद हस्तिनापुर लौटे तो उन्हें पूर्ण विश्वास था कि राजा धृतराष्ट्र उनके हिस्सेका आधा राज्य उन्हें लौटा देंगे। लेकिन जब ऐसा नहीं हुआ तो महाभारतका भयानक युद्ध हुआ, जिसमें करोड़ों लोग हताहत हुए।

कहते हैं कि व्यक्ति जब धन, पद या शरीर-सौष्ठवके शिखरपर होता है, तब अपेक्षाओंका ताण्डव और भी भयंकर होता है। अपनेसे कमजोरको देखते ही वह आक्रामक हो जाता है। अपेक्षा चूँकि मनके संकुचनका कार्य करती है, अतः विवेकद्वारा इसका निवारण भी हो सकता है। जो मित् अर्थात् सीमितीकरणसे मुक्त कर सके, वही पशुसे मित्रता भी करा सकता है। व्यक्तिको पशुतासे मुक्त कराते ही वह मानवीय धरातलपर जीना शुरू कर देता है। मानव ज्यों-ज्यों अपेक्षाओंसे मुक्त होगा, उसका अचेतन मन खाली होता जायगा, जिससे प्रतिक्रियाओंका सिलसिला बन्द होने लगेगा और नकारात्मक भूमिका सिमटती चली जायगी। व्यक्तिका यह प्रेम धीरे-धीरे उसकी आत्माका विस्तार करने लगेगा। **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** का भाव ही उसे नरसे नारायण बना देगा और उसका जीवन जो अपेक्षाओंकी बेड़ियोंमें बँधा था, मुक्त हो जायगा, ऊर्ध्वगामी हो जायगा। किसी कविने बड़ा सुन्दर कहा है—

अपेक्षा से सदा पैदा होता है विषाद।
करें तौबा तो मिले सुख का प्रसाद॥

साधकोंके प्रति—

[बिन्दुमें सिन्धु]

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

अविनाशी और नाशवान्—ये दो ही तत्त्व हैं। नाशवान् तत्त्वकी प्राप्तिके लिये चौरासी लाख योनियाँ हैं, पर अविनाशी तत्त्वकी प्राप्तिके लिये एक मनुष्ययोनि ही है। इस मनुष्ययोनिमें आकर भी आप अपना समय धनका संग्रह करने और भोग भोगनेमें लगा दोगे तो फिर अविनाशी तत्त्वकी प्राप्ति कब करोगे? यह बात खास सोचनेकी है। अभी अविनाशी तत्त्व अपने अधिकारमें है। वह अविनाशी तत्त्व मिलता है—दूसरोंकी सेवा करनेसे, दूसरोंका हित चाहनेसे—**'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः।'** (गीता १२।४)

हमारा लाभ हो जाय—इस स्वार्थकी वृत्तिसे हमारा बड़ा नुकसान है। मिलेगा कुछ नहीं और असली लाभसे वंचित रह जायँगे। हमारी प्रत्येक प्रवृत्ति दूसरोंके हितके लिये होनी चाहिये। अपने स्वार्थकी वृत्ति बहुत पतन करनेवाली है; परंतु हरेक काम करनेमें यही वृत्ति मुख्य रहती है कि मेरेको सुख कैसे हो, लाभ कैसे हो? होना यह चाहिये कि दूसरोंको लाभ कैसे हो? दूसरोंका दुःख कैसे दूर हो? कोई भी काम करें तो 'मेरेको क्या फायदा होगा'—इसकी जगह यह सोचें कि 'दूसरोंको क्या फायदा होगा।' जिस कामसे दूसरेको लाभ नहीं होगा, वह काम हम नहीं करेंगे। इस प्रकार भाव बदले बिना शान्ति नहीं मिलेगी। आपका उद्देश्य दूसरोंका हित करनेका होगा तो आपका हित अपने-आप होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

आपको अपने निर्वाहकी चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। आपके निर्वाहका प्रबन्ध पहलेसे है। जिस परमात्माने जन्म दिया है, उसपर आपका पालन करनेकी जिम्मेवारी है। सबके हितका भाव रखनेसे आपकी जो उन्नति होगी, वह स्वार्थका भाव रखनेसे नहीं होगी। दूसरेका हित न कर सको तो कम-से-कम इस बातका ख्याल रखो कि मेरे द्वारा किसीका अहित, नुकसान न हो जाय। हरदम यह सावधानी रखो। आपके लोक और परलोक दोनों सुधर जायँगे, इसमें सन्देह नहीं है।

× × ×

आप घरमें रहते हुए अपनेको मालिक न मानकर सेवक मानें तो आपके द्वारा बहुत हित होगा और स्वाभाविक बहुत उन्नति होगी। जो अच्छे-अच्छे सन्त हुए हैं, उनमें कोई गुण था तो वह था—स्वार्थका त्याग। दीखनेमें स्वार्थ अच्छा दीखता है, पर वास्तवमें स्वार्थी आदमीकी उन्नति नहीं होती। स्वार्थी आदमीका स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। स्वार्थबुद्धि तो पशु-पक्षियोंमें भी होती है। पशु-पक्षी भी धूपसे अपनी रक्षा करनेके लिये छायामें बैठते हैं, शीत तथा वर्षासे अपनी रक्षा करते हैं; परंतु वे अपना कल्याण नहीं कर सकते। कल्याण वही कर सकता है, जो अपने स्वार्थका त्याग करके दूसरेका हित करता है।

आपका भला वास्तवमें भगवान्की कृपासे होगा, आपकी चतुराईसे नहीं। अपनी चतुराईसे भला होता हो तो सब अपना भला कर लें। भगवान्की कृपा तब होगी, जब आप अपना स्वार्थ और अभिमान छोड़ दोगे, भगवान्के शरण हो जाओगे। भगवान्की कृपाका भरोसा रखोगे तो जहाँ जाओगे, वहीं आपकी विजय होगी। पाण्डवोंने विजय प्राप्त की तो उसके पीछे भगवान्की कृपाका ही बल था। इसलिये आप निमित्तमात्र बन जाओ, रात-दिन भजन-स्मरण करो, पर भरोसा कृपाका ही रखो। एक भगवान्को याद रखो तो सब काम सिद्ध हो जायगा, लोक और परलोक सब सिद्ध हो जायगा—***'एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय।'*** भगवान्के भक्त भगवान्को याद रखते हैं, फिर वे संसारके सुख और दुःखकी परवाह नहीं करते।

× × ×

आपके दो खास काम हैं—भगवान्‌को याद रखना और दूसरोंको सुख पहुँचाना। दूसरोंको सुख न पहुँचा सको तो कम-से-कम किसीको दु:ख मत पहुँचाओ। आप किसीके दु:खमें निमित्त मत बनो। किसीको बुरा मत समझो, किसीका बुरा मत चाहो और किसीका बुरा मत करो—यह मामूली बात नहीं है, बहुत ऊँची बात है। इससे आपका अन्त:करण निर्मल होगा, नहीं तो अन्त:करण निर्मल नहीं होगा। अन्त:करण निर्मल हुए बिना अच्छी बातें पैदा नहीं होंगी, पैदा होंगी भी तो ठहरेंगी नहीं। अन्त:करण जितना निर्मल होगा, उतनी आपकी स्वाभाविक उन्नति होगी—यह सिद्धान्त है। भला करना इतनी ऊँची बात नहीं है। बुराईका त्याग करनेसे भलाई स्वत: होगी। दूसरोंकी सेवामें रुपये खर्च करना ज्यादा ऊँची बात नहीं है। यह तो एक टैक्स है। टैक्स देना दण्ड है, कोई ऊँची बात नहीं है। आपने रुपया इकट्ठा किया है तो टैक्स दो, दूसरोंकी सेवा करो।

मैंने सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-की एक पुरानी बात सुनी है। सेठजी गोहाटी गये थे। वहाँ व्याख्यान देते समय उन्होंने गीताके '**निर्वैर: सर्वभूतेषु**…' (११।५५)—इस पदकी विस्तारसे व्याख्या करते हुए कहा कि किसी भी प्राणीके साथ अपने हृदयमें वैर नहीं रखना चाहिये। वैरभाव, ईर्ष्या रखनेसे अन्त:करण बहुत अशुद्ध होता है। वहाँ सत्संगमें दो धनी वृद्ध सज्जन बैठे थे। उनकी आपसमें खटपट थी। उनमेंसे एक बोला कि 'मेरा दुनियामें किसीके साथ वैर नहीं है, केवल एक व्यक्तिके साथ वैर है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मरनेवाला हूँ। वैर साथमें रखकर जाना ठीक नहीं है। इसलिये आजसे मैं वैर यहीं छोड़ देता हूँ। अब मैं उसे कभी दु:ख नहीं पहुँचाऊँगा। उसका बुरा कभी नहीं चाहूँगा, नहीं करूँगा।' दूसरा व्यक्ति भी वहीं बैठा हुआ था। सेठजीने उससे पूछा तो उसने कहा कि 'यह आज सीधा हुआ है! इसने मेरेको बहुत दु:ख दिया है। आज यह कहता है कि मैं वैर नहीं रखूँगा, तो यह वैर नहीं मिट सकता।' सेठजीने कहा कि 'मनमें अच्छी बात रखो। किसीके प्रति बुरा भाव लेकर जाना अच्छा नहीं है।' वह बोला कि 'महाराज, यह तो साथमें ही जायगा।' सेठजीने कहा कि 'साथमें बढ़िया चीज लेकर जाओ, वैर क्यों लेकर जाओ!' पहलेवाले सज्जनके मनमें बड़ा दु:ख हुआ कि मैं वैर छोड़ना चाहता हूँ, पर यह वैर छोड़ता नहीं! यह वैर नहीं छोड़ेगा तो मेरा वैर छूटेगा नहीं! अब मैं क्या करूँ? वे घबरा गये और रोने लग गये। सेठजीने उसकी पीठ ठोंकते हुए कहा कि 'मेरा स्वभाव नहीं है, फिर भी कहता हूँ कि वह भले ही वैर रखे, पर तुम्हारा वैर तो निकल गया!' सेठजीने दूसरे व्यक्तिसे कहा कि 'मैं तुम्हें भी कहता हूँ कि तुम भी वैर छोड़ दो।' उसने विचार किया कि दूसरेने तो वैर छोड़ दिया और सेठजीने भी कह दिया कि तुम्हारा वैर निकल गया, तो फिर मैं अकेला ही वैर क्यों रखूँ? ऐसा सोचकर उसने भी कह दिया कि 'मैं भी वैर छोड़ता हूँ।' दोनोंने आपसमें मिलकर एक-दूसरेको नमस्कार कर लिया। आगे चलकर एक बार जब स्वर्गाश्रममें वटवृक्षके नीचे सत्संग हो रहा था, तब उस व्यक्ति (जिसने सर्वप्रथम वैर छोड़ा था)-के बेटेने सेठजीको बताया कि मेरे पिताजीका शरीर छूटा तो उनके प्राण दशम द्वारसे निकले! उनकी वही गति हुई, जो योगियोंकी होती है!

× × ×

धर्मके लिये, दान-पुण्य करनेके लिये, दूसरोंका हित करनेके लिये भी पैसेकी जरूरत नहीं है। जो धर्मके लिये पैसा चाहता है, वह धर्मके तत्त्वको नहीं जानता। बम्बईमें मेरेसे कहा गया कि गायें भूखों मर रही हैं, अगर आप सत्संगमें कुछ दान-पेटियाँ रखवा दें और धनी आदमियोंको इकट्ठा करके गायोंकी सेवा करनेकी प्रेरणा करें तो बहुत रुपये इकट्ठे हो जायेंगे, जिनसे गायोंकी बहुत सेवा होगी। मैंने कहा कि मैं वास्तवमें यहाँ ईश्वर और धर्मका महत्त्व बढ़ाने आया हूँ। अगर मैं ऐसी बात करूँ तो सबके मनमें यह जँचेगी कि पैसा बहुत बढ़िया

चीज है, स्वामीजी भी पैसा लानेकी बात कहते हैं! इनको भी पैसोंकी जरूरत है! इससे पैसोंका ही महत्त्व बढ़ेगा, जो आपके भीतर पहलेसे ही बढ़ा हुआ है। मैं पैसोंका महत्त्व बढ़ाना नहीं चाहता। कलकत्तेमें भी मुझसे ऐसी बात कही गयी तो मैंने कहा कि किसीको पैसोंके लिये कहना, पैसे माँगना उसके कलेजेमें छुरी चलाना है! ऐसा कसाईपना मेरेसे नहीं होता। लोग कहते तो हैं कि पैसा हाथकी मैल है, पर यह बात केवल कहनेकी है। वास्तवमें तो पैसा उनके कलेजेकी कोर (टुकड़ा) है!

आपकी शक्ति हो तो गायोंका पालन करो, गरीबोंकी सेवा करो, पर किसीसे पैसा मत माँगो। पैसोंकी गुलामी मत करो। आपके भाग्यसे जो पैसा आनेवाला है, वह तो आयेगा ही। ब्रह्माजीकी भी ताकत नहीं कि उसे रोक दें!

× × ×

परमात्माको प्राप्त करना सम्भव है, पर शरीरको बनाये रखना असम्भव है। उम्र कम-ज्यादा हो सकती है, पर शरीर सदा बना रहे—यह सम्भव नहीं है। जो बहुत बड़े चिरंजीवी हैं, उनका भी शरीर सदा बना नहीं रहता। इसलिये शरीरको बनाये रखनेकी धारणा न करके परमात्माको प्राप्त करनेकी धारणा करनी चाहिये। यह मूल, खास बात है।

एक विलक्षण बात है कि परमात्मा सम्पूर्ण प्राणियोंमें हैं। अगर कोई समझना चाहे तो मनुष्यमात्र इस तत्त्वको समझ सकता है। शरीर किसीके साथ रहनेवाला नहीं है और परमात्मा किसीका साथ छोड़नेवाले नहीं हैं। परमात्मा सबके साथ सदा रहते हैं। केवल यह विश्वास कर लें कि परमात्मा सबमें हैं और वे मेरे हैं। जैसे हवाई जहाज चलता है तो उसमें कोई मनुष्य (चालक) दीखता नहीं, पर उसमें मनुष्य जरूर होता है, नहीं तो उसको चलाता कौन है? ऐसे ही परमात्मा सबमें हैं, नहीं तो सबको चलाता कौन है? वे परमात्मा हमारे हैं। एक बात और समझनेकी है कि एक परमात्माके सिवाय अपनी चीज कोई नहीं है। अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, पर उनमें तिल जितनी चीज भी अपनी नहीं है। इसलिये संसारसे मिली हुई चीजोंके द्वारा संसारकी सेवा करो, संसारको सुख पहुँचाओ। 'है' नाम परमात्माका ही है। संसार 'नहीं' है। जो 'है', वह हमारा है। जो 'नहीं' है, वह हमारा नहीं है।

ऐसा विश्वास करो कि हमारा परमात्मा हमारेमें है। परमात्मा विश्वाससे मिलते हैं—

'बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु॥'

(रा०च०मा० ७। ९०क)

मन को बुहार

(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)

मन को बुहार, मन को बुहार
कर विवेक निकलें विकार।
क्या असत् क्या है अहितकर
सोचले, करले विचार॥ १॥

जो असत् वो है निरर्थक
भ्रम के कारण भासता।
काज जो भी है अहितकर
भव समर में फाँसता॥ २॥

कामना कितनीं बसीं हैं
गहरी मन में आज भी।
एक पूरी हो भी जाती
फिर भी लगती प्यास सी॥ ३॥

मोह की माया प्रबलतम
मुक्ति में व्यवधान है।
मोह से आवागमन सब
मोह ही जंजाल है॥ ४॥

गहन है गति कर्म की सो
सावधान होकर सुनो।
शुद्ध हों निष्काम हों सब
दिन-रात ये मन में रखो॥ ५॥

मन को बुहार, मन को बुहार
प्रभु को निहार, जग दे बिसार।
आनन्द ही आनन्द है फिर
देखले कर एक बार॥ ६॥

अन्त मति सो गति

(श्रीइन्द्रमलजी राठी)

सन्तोंने, पूर्वजोंने एवं आध्यात्मिक मनीषियोंने लम्बे अनुभवके उपरान्त '**अन्त मति सो गति**' सूत्रका प्रतिपादनकर स्पष्ट किया है कि मरणासन्न प्राणीके ठीक मृत्युके पूर्व जैसे विचार होंगे, भगवान् उसे वही योनि निश्चित रूपसे प्रदान करेंगे—इसमें तनिक भी संशय नहीं। विभिन्न योनियोंमें प्रतिपादित सुकर्मोंके फलस्वरूप प्रभुने मोक्षका पात्र समझकर प्राणीको इस उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये मानवयोनि प्रदान की है फिर भी वह यदि पथभ्रष्ट हो पुनः-पुनः विभिन्न योनियोंमें भटकनेसे अपने-आपको मुक्त नहीं कर सकता तो इसमें दोष किसका? कर्मके कारण ही ऐसा होता है।

कर्म करना जगत्‌का मुख्य कर्तव्य है। ईश्वरने कभी भी नहीं कहा कि कर्मसे परे रहें, परहेज करें। कर्म करो मगर स्वार्थवश नहीं, परमार्थहेतु करो। अपना अनिष्ट सहकर भी परमार्थहेतु किया गया कर्म भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय है। प्रत्येक कर्म उसके द्वारा प्रेरित, निर्दिष्ट एवं निर्धारित है, जिसके लिये निमित्त तो आपको बनना ही पड़ेगा।

कर्म-बन्धनसे मुक्तिके लिये प्रत्येक कर्म पूर्ण निष्ठाके साथ निष्पादितकर उस परम पिताको समर्पण कर दो। कर्म उसीका, कर्मकर्ता भी वही और फल-भोक्ता भी वही। तुम्हारी संलिप्तता ही कर्ताभिमानका अहं पालकर तुम्हें पद-विचलनका दोष भोगा रही है। यही वह भ्रम है। भगवान्‌ने इससे मुक्ति पानेके लिये जो उपाय सुझाया है, वह ही अन्त मति सो गतिका है। इसका विपरीतार्थ कभी न लगाया जाय कि जीवन नरकगामी कर्मोंमें संलिप्त रहकर भी अन्त समयमें भगवन्नाम-जप और दर्शनद्वारा मोक्ष मिल ही जायगा। वस्तुतः ऐसे प्राणीको भगवान् निजोन्मुखी होने ही नहीं देता। अतः जीवनपर्यन्त फलोन्मुखी न होकर सत्कर्मोंसे मोक्ष पानेकी पात्रता अर्जन करते रहना उसका प्रथम निर्देश है। उसकी अनुपालनामें तनिक भी कोताही उसे स्वीकार्य नहीं।

मानव मन वायु-वेगसे भी अधिक गतिशील है। उसपर नियन्त्रण पाना दुष्कर है, किंतु असम्भव नहीं। हमारी भारतीय-संस्कृतिमें नित्यकर्मका अपना महत्त्व है। इस हेतु आप जितना भी समय दें, उस कालमें सांसारिक विचारोंसे परे उसीमें निमग्न हो जायँ, ५-१० मिनटसे लेकर घण्टे-दो घण्टे अथवा जितना भी समय उसके स्मरणहेतु दें, उस समयमें मन-दृष्टि केवल सम्बन्धित विग्रह अथवा टीका/तिलक-बिन्दु (दोनों भौंहोंके मध्य)-पर स्थिर रखें। शनैः-शनैः अभ्याससे मन सांसारिक विचारोंसे परे भक्तिभावमें ही निमग्न हो जायगा। तल्लीनता बढ़ेगी, आश्वस्त होनेपर अगला पद होगा निर्विचार होना। धीरे-धीरे विचारशून्य रहनेका अभ्यास बढ़ाते जायँ। भगवन्नामदेशानुसार मन्मना, मद्भक्त एवं मद्रूप होनेमें उसीकी असीम अनुकम्पासे शीघ्र सफलता प्राप्त होगी। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं, इसके उपरान्त अगला पद ध्यानका है। लम्बे समयतक निर्वैचारिक रहना ही ध्यानावस्था है।

आयुर्वृद्धिके साथ-साथ सामान्य जीवन-यापनमें भी व्यवधान होना स्वाभाविक है। अतः अधिकाधिक समय भगवन्नाम-जपमें लगाना ही अधिक श्रेयष्कर होगा। सांसारिक संलिप्ततासे भी परे रह सकेंगे। यह सोपान आपको अंतिम समयमें भी भगवानोन्मुख बनाये रखनेमें सहायक सिद्ध होगा। भगवान्‌ने तो गीतामें स्पष्ट किया है कि एक बार तू मेरा हो जा, फिर देख मैं तेरा कितना ध्यान रखता हूँ। स्पष्ट संकेत है कि मन, कर्म, वचन एवं विचारसे एक बार शरणागत होनेपर आप उसके और वह आपका हो जायगा। मैं केवल भगवान्‌का और केवल भगवान् ही मेरे—यही एकमात्र विचार सदा-सर्वदा आपके मन-मस्तिष्कमें रहेगा। दुष्कृत्योंसे दूर रखकर वह आपको सुकृत्योंहीमें लीन रखेगा। निजोन्मुख बनाये रखेगा, असमर्थताकी दशामें वह अपने भक्तका सदैव ध्यान रखते हुए अन्तकालमें वह अपनेहीमें उसे समाहित कर लेता है। बस, यही मोक्ष है, प्राणी अन्तमें उसीमें लीन हो जाता है, तद्रूप हो जाता है।

जीवनमें सफलताके सूत्र

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी)

जीवनका उद्देश्य निर्धारित करें—उद्देश्यके बिना व्यक्तिका जीवन कोई महत्त्व नहीं रखता और वह ऐसे ही है जैसे बिना पतवारके नाव। मनुष्यका जीवन यूँ ही जीनेके लिये नहीं हुआ है, यह तो कुछ करनेके लिये हुआ है, जिससे उसका स्मरण मरनेके बाद भी लोग कर सकें। जीवनका उद्देश्य निश्चित करके उसकी पूर्तिहेतु सावधानीपूर्वक कार्य करना जरूरी है।

नित्य प्रभु-स्मरण करें—प्रतिदिन प्रार्थना, स्तुति, प्रभुके ध्यानके लिये कुछ समय (कम-से-कम आधा घण्टा) अवश्य दें। परिवारमें प्रति सप्ताह सामूहिक सत्संग, भजन, कीर्तन आदिके लिये भी समय निश्चित करें। प्रतिदिन कार्य आरम्भ करनेसे पूर्व माता-पिता, गुरुको नित्य प्रणाम करें; क्योंकि प्रभुकी कृपा एवं पूज्यजनोंके आशीर्वादसे ही हर क्षेत्रमें सफलता प्राप्त हो सकती है।

अपने कामको श्रेष्ठ मानें—अक्सर ऐसा होता है कि जो जिस काममें है, वह उस काममें खुश नहीं होता। नौकरीवालेको व्यवसायमें तथा व्यवसायवालेको नौकरीमें अधिक लाभ दिखायी देता है। नौकरीवालेको जीवन पराधीन लगता है। व्यापारीको जीवनमें घाटेकी चिन्ता रहती है और दुकानमें कार्यके लिये समय भी अधिक देना पड़ता है। किसानको लगता है कि खेतीसे आय कम होती है तथा मेहनत ज्यादा करनी पड़ती है। इस तरह सभीको अपने-अपने कार्यमें असन्तोष महसूस होता है। किंतु यदि आप पूरे जीवनमें खुशी चाहते हैं तो अपने कामसे प्यार करें, अपने कार्यको ही श्रेष्ठ मानें; क्योंकि कार्य ही पूजा है।

कर्तव्यपालन जरूरी है—माता-पिताके प्रति, भाईके प्रति, पत्नीके प्रति, मित्रके प्रति, बच्चोंके प्रति क्या कर्तव्य हैं? यह जानना तथा उसपर आचरण करना बुद्धिमानी है तथा जीवनको उन्नत बनानेके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण है। रामायण हमें कर्तव्यपालनकी शिक्षा देती है। तुलसीदासजीने रामायणमें लिखा है—***'रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचनु न जाई॥'*** जिसको वचन दें, उसे अवश्य पूरा करें। वचन-पालनसे ही समाजमें आपकी विश्वसनीयता बढ़ती है। आपकी प्रतिष्ठा बढ़ेगी तो आपकी उन्नतिको भी कोई नहीं रोक सकता। अतः सदा मन, कर्म और वचनसे अपने कर्तव्यको पूरा करना चाहिये।

समयका सदुपयोग करें—समयका सदुपयोग प्रत्येक कार्यको समयपर पूर्ण करके किया जा सकता है। जिस कार्यको करें पहले उसे पूरा करके दूसरा कार्य प्रारम्भ करे। कार्यालयमें, समारोहमें और यात्रा आदिके लिये निश्चित समयपर पहुँचकर समयकी पाबन्दीका ध्यान रखना ही सफलताकी निशानी है। आलस्य या व्यर्थकी बातोंमें समयका दुरुपयोग होता है। कहते हैं बीता हुआ समय वापस नहीं आता है। अतः समय बरबाद न करना चाहिये। वर्तमान समयको इतना खूबसूरत बना लें कि इन सुनहरे दिनोंको कभी भुला न सकें।

अपने कार्यमें व्यस्त रहें—एकाकीपनको दूर करनेका सर्वोत्तम तरीका है—कार्यव्यस्तता। सदा कार्यमें व्यस्त रहनेसे खुशी मिलती है। अपने कार्योंको सकारात्मक ढंगसे पूरा करके आप अधिक सक्षम हो सकते हैं। प्रतिदिन एक घण्टा कम सोनेसे आप अपने जीवनमें कार्यके लिये पाँच साल बढ़ा सकते हैं। जितने भी महापुरुष हुए हैं वे सदैव अपने लक्ष्यके प्रति सचेत एवं सतर्क रहे हैं। उनकी कार्यके प्रति समर्पित भावनासे ही उन्हें कठिन कार्योंमें भी सफलता प्राप्त हो सकी।

आध्यात्मिक बनिये—विलासिता सत्यकी प्राप्तिके मार्गमें सबसे बड़ी बाधा है। विलासिताका परित्यागकर व्यक्ति अध्यात्मकी ओर बढ़ सकता है एवं दृढ़ विश्वासकी उच्च स्थितिको प्राप्त कर लेता है। इन्द्रियोंकी आसक्तिसे ऊपर उठिये, तभी जीवनमें आगे बढ़ सकेंगे। भौतिक पदार्थ क्षणभंगुर हैं, हम उन्हें वस्तुतः अपना नहीं कह सकते, वह तो केवल अल्प समयके लिये हमारे

पास रहते हैं, किंतु आध्यात्मिक उपलब्धियाँ स्थायी होती हैं, जो हमेशा हमारे साथ रहती हैं। भौतिक चीजोंमें अनासक्तिसे ही आध्यात्मिक उपलब्धि प्राप्त की जा सकती है तथा जीवनको आनन्दमय बनाया जा सकता है।

आत्मनियन्त्रण करिये—आत्मनियन्त्रणद्वारा मनुष्य ऊँचाईयोंके शिखरतक पहुँच सकता है। प्रत्येक व्यक्तिमें बहुत कुछ कर सकनेकी क्षमता होती है। उसकी उन्नतिका सबसे बड़ा रहस्य है आत्मनियन्त्रण। यही मनुष्यके आगे बढ़नेकी पहली सीढ़ी है। इसलिये जिस व्यक्तिने आत्मनियन्त्रण कर लिया, उसे अवश्य सफलता मिलती है। जो व्यक्ति आत्मनियन्त्रण कर लेता है, वही क्रोधपर नियन्त्रण कर सकता है।

आत्मनिरीक्षण करिये—आत्मनिरीक्षण एवं आत्म-सुधार करके अपनी छोटी-छोटी गलतियोंको पहचानकर उन्हें दुबारा नहीं दोहरायें, तभी जीवनमें उन्नति कर सकते हैं। आप हर सप्ताह अपनी प्रगतिका मूल्यांकन करें तथा यह मालूम करें कि आपने कब कौन-सी गलती की और भविष्यमें उसे न करनेका संकल्प करें।

आवश्यकताएँ कम करिये—दूसरोंकी देखा-देखी अपनी आवश्यकताएँ बढ़ाकर आयसे अधिक खर्च बढ़ाना क्या उचित है? अपनी आयसे अधिक खर्च नहीं करें। हमें ध्यान रखना चाहिये कि जितनी हमारी आवश्यकता कम होगी, उतनी चिन्ता भी कम होगी और सन्तोष अधिक होगा। सिर्फ आवश्यक वस्तुओंकी ही खरीददारी करें, घरको म्यूजियम न बनायें।

आदर्श मित्र चुनें—मित्र क्या है? वह एक ऐसा व्यक्ति है, जिसके साथ आप स्वयं निडर हो जाते हैं। मित्र वह है, जिसके सामने कोई अपने दिलकी सब बातें प्रकट कर सकता है। एक मित्र-विहीन व्यक्ति ऐसा है जिसका बायाँ हाथ है, लेकिन दायाँ नहीं। कोई भी व्यक्ति बिना मित्रके बेकार है। आदर्श मित्र वही है, जो अपने मित्रोंके प्रति वफादार रहे। मित्र ज्यादा न हों तो केवल दो-चार विश्वसनीय मित्र ही रखें। मित्र ऐसा हो जो सबके प्रति सद्भावना एवं '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' की कामना रखे। सुखकी अपेक्षा दुःखमें मित्रका अधिक साथ दें।

सबके प्रति सद्भावना रखें—दूसरोंके साथ वही व्यवहार करें—जैसा आप अपने लिये चाहते हैं। बहससे कोई फायदा नहीं होता, ईमानदारीसे सामनेवाले व्यक्तिका नजरिया समझनेकी कोशिश करें। सामनेवाले व्यक्तिके विचारों और इच्छाओंके प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करें। दूसरे व्यक्तिके विचारोंके प्रति सम्मान दिखायें। यदि वे गलत भी हों तो उसे एकान्तमें समझायें। अगर गलती आपकी हो तो तत्काल अपनी गलती मान लें। दूसरोंकी छोटी-सी दयालुताको न भूलें, अपने छोटे-से उपकारको भी याद न रखें। किसीके प्रति दुर्भावना, कठोरता तथा कटुताकी भावना नहीं होनी चाहिये। सबके प्रति सद्भावना रखें।

मुसकरानेकी आदत डालें—आपकी मुसकराहट आपकी सद्भावनाका सन्देश है। आगन्तुकका मुसकराते हुए स्वागत करें। मुसकराते रहेंगे तो तनाव एवं चिन्ताग्रस्त नहीं होंगे। गुलाबके पुष्पकी भाँति चेहरेपर सदा मुसकान रखें। सदा हँसते-मुसकराते रहेंगे तो सभी आपको पसन्द करेंगे। आपकी पाचनशक्ति भी बढ़ेगी तथा आपका स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा।

उत्साहवर्धन करें—दूसरोंको प्रोत्साहित कीजिये ताकि उनका उत्साहवर्धन हो। सराहना और प्रोत्साहनके द्वारा लोगोंसे कठिन कार्य भी कराये जा सकते हैं। दिल खोलकर तारीफ करना तथा मुक्तकण्ठसे प्रशंसा, सराहना करना उत्साहवर्धनमें सहायक होता है। सच्ची प्रशंसा करनेकी आदत डालें। दूसरोंकी गलतियाँ सबके सामने न बतायें। किसीकी आलोचना करनेसे पहले अपनी गलतियोंपर ध्यान दें। अच्छे कार्य करनेवालोंके छोटे-से-छोटे कार्यकी भी प्रशंसा करें। सामनेवाले व्यक्तिकी आप दिल खोलकर तारीफ करेंगे और मुक्त कण्ठसे सराहना करेंगे तो वह आपका कहा काम खुशी-खुशी करेगा। कार्य पूर्ण होनेपर धन्यवाद एवं आभार प्रकट करना भी न भूलें।

सन्तोषी बनें—कहावत है—सन्तोषी सदा सुखी।

धनोपार्जनके लिये गलत तरीके एवं भाग-दौड़से आप तनावग्रस्त हो सकते हैं; क्योंकि जरूरतें खत्म हो सकती हैं पर लालच नहीं। जो थोड़ेसे सन्तुष्ट है, उसके पास सब कुछ है। जीवन जीना एक ऐसी कला है, जिसमें कम साधनोंसे जीवनको आनन्दमय बनाया जा सकता है। संग्रहकी प्रवृत्ति कभी नहीं रखें।

उपकारकर भूल जायें—अरस्तूके अनुसार आदर्श व्यक्ति वह है, जिसको दूसरोंका उपकार करनेमें सुख मिले और जो दूसरोंके उपकारोंको स्वीकार करनेमें लज्जा महसूस करे; क्योंकि दूसरोंपर कृपा करना महानताका परिचायक है, किंतु दूसरोंकी कृपा हासिल करना हीनताका परिचायक है।

विचारोंका आदान-प्रदान करें—यदि आपके पास एक रुपया है और मेरे पास भी एक रुपया है और हम एक-दूसरेसे रुपये बदल लेते हैं तो भी हम दोनोंके पास एक-एक रुपया ही रहता है, किंतु यदि आपके पास कोई बेहतर विचार है और मेरे पास कोई दूसरा विचार है और हम आपसमें ये विचार बदल लेते हैं तो हम दोनोंके पास दो बेहतर विचार हो जाते हैं। इसलिये विचारोंके विनिमयसे अपने ज्ञानकी अभिवृद्धि करें।

गलतीसे सबक सीखें—गलती मनुष्यसे होती है, विश्वमें ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है, जिससे गलती नहीं हुई हो। गलतीसे सबक सीखना चाहिये। वैसी गलती दुबारा नहीं हो, यह ध्यान रखना चाहिये। ठोकर खाकर दुबारा ठोकर न खायें, इसीमें बुद्धिमानी है।

अहंकार न करें—मैं ही अधिक बुद्धिमान् एवं सर्वगुणसम्पन्न हूँ—यही मनुष्यका सबसे बड़ा भ्रम है। उन्नतिके रास्तोंमें सबसे बड़ी बाधा अपनेको अपनी योग्यतासे अधिक प्रदर्शनकी भावना होती है। सदैव दूसरोंसे सीखनेकी भावना होनी चाहिये। तभी निरन्तर ज्ञानमें वृद्धि होगी तथा प्रगतिकी ओर कदम बढ़ेंगे। अहंकारी मनुष्यको सदैव नीचा देखना पड़ता है। रावण एवं कंसका सर्वनाश उनके अहंकारके द्वारा ही हुआ था।

क्रोधपर नियन्त्रण करिये—क्रोध मनुष्यका सबसे बड़ा शत्रु है। क्रोधपूर्ण व्यवहारसे क्रोधपर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता है। अतः सब तरहसे बौखलाहट तथा दुर्व्यवहारका परित्याग कीजिये। शान्तचित्त, आत्मनिर्भर और दयालु बने रहिये।

निन्दा न करें—बुराई मत करो, निन्दा मत करो, शिकायत मत करो। प्रशंसा और चापलूसीमें अन्तर है। एक सच्ची होती है, दूसरी झूठी। एक दिलसे निकलती है, दूसरी बनावटी होती है। आलोचनासे कोई सुधरता नहीं है, अपितु सम्बन्ध बिगड़ते हैं। किसी भी व्यक्तिकी निन्दा, आलोचना, टीका-टिप्पणी न करें, इससे कोई फायदा नहीं होता है, बल्कि मनमुटाव हो जाता है।

प्रत्येक पाप, दुराचारसे बचिये—यह न सोचें कि छोटे-छोटे दुराचार, पाप, चोरी आदिमें कोई दोष नहीं हैं। जैसे बूँद-बूँदसे घड़ा भरता है, वैसे ही छोटे-छोटे पाप एवं दुराचारोंसे हमारा चरित्र गिर जाता है और हम दूसरोंकी नजरोंमें गिर जाते हैं। दूसरोंका हमारे प्रति आदर-सम्मान कम हो जाता है। इसलिये छोटे-छोटे दोषोंको भी भयंकर अपराध समझकर उनका परित्याग करना चाहिये।

शरीरको निरोगी रखें—सबसे महत्त्वपूर्ण बात है शरीरको निरोगी रखना। शरीरको निरोगी रखनेके लिये नित्य सूर्योदयसे पहले उठना, प्रातः भ्रमण करना, व्यायाम, योग, प्राणायाम करना जरूरी है। गरिष्ठ भोजन, मांसाहार, अण्डे, धूम्रपान, मदिरापान, फास्ट फूड, कोल्डड्रिंक, तम्बाखू, पान-मसाले, गुटखा आदिका सेवन कभी न करें। स्वच्छ हवा, शुद्ध पानी, गायका दूध, अंकुरित अनाज, फल, कच्ची सब्जियोंके सलादका सेवन करनेसे ही सदा निरोगी रह सकते हैं, अतः इनका ही ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग करना चाहिये।

आप भी इन सूत्रोंको अपने दैनिक जीवनमें अपनाकर सफलताके शिखरपर पहुँच सकते हैं तथा जीवनको आनन्दमय बना सकते हैं।

'प्रिय लागे मोहि ब्रज की बीथिन'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

झुलसाती गर्मीको अपने आँचलमें समेटे आषाढ़ मास विदा हुआ। गीत, संगीत और नृत्यसे सुशोभित हरियाले सावनका शुभागमन हुआ। आकाश-मण्डल श्यामल मेघमालाओंसे आच्छादित होने लगा। सहसा ही गगनमें बिजुरिया चमकने लगी, बदरा गरजने लगे, नन्हीं-नन्हीं बुन्दियाँ पृथ्वीको शीतल करने लगीं। वर्षाकी झरती बूँदोंसे भीगकर हरी-भरी लताएँ पुरवैया वायुके स्पर्शसे झूमने लगीं। वनोंमें मयूरोंका नृत्य देख कोकिलोंके कण्ठ भी मुखरित हो उठे। हरियाली और रंग-बिरंगे पुष्पोंने पृथ्वीमाताको शृंगारित कर दिया। प्रकृतिके ऐसे मनमोहक सौन्दर्यसे आकर्षित हो ब्रजकी रसिक गोपियाँ यमुनापुलिनपर जानेको अधीर हो उठीं। वे एक-एक कर अपने-अपने भवनसे बाहर आयीं और मल्हार गीत गाती हुई चल पड़ीं कालिन्दीतटकी ओर। उधर श्रीराधारानी अपने भवनकी छतपर बैठी दूर गगनमें पक्षियोंका उड़ना देख रही थीं। जैसे ही उन्हें नारी कण्ठसे मधुर गीत सुनायी पड़े, वे शीघ्रतासे उनके बीच पहुँचनेको लालायित हो उठीं। उसी समय श्रीराधाने ललिता, बिशाखा आदि अपनी प्रिय सखियोंका मानसिक स्मरण किया। वे तुरंत ही श्रीवृषभानु-भवनमें उपस्थित हो गयीं। श्रीराधा उन सबको अपने संग ले यमुना-पुलिनपर जा पहुँचीं। संयोगसे श्रीकृष्ण भी अपने बाल सखाओंसहित वहाँ आ पहुँचे।

सखियोंका संकेत पाकर विश्वकर्माने उसी स्थानपर एक दिव्य झूलेका निर्माण कर दिया। प्रिया-प्रीतमको उस झूलेपर विराजमान करा सखियाँ झौंटे देने लगीं।

इस लीलाका सरस वर्णन करते हुए सूरदासजीने लिखा है—

यमुना वंशीवट निकट हरन हिंडोरे हीथ।
रंग देव्यादि झुलावहिं झूलत प्यारी पीव॥
द्वै खंभ विसकर्मा बनाए कामकुंद चढ़ाई।
हरित चूनी, जटित नग सब लाल हीरा लाई॥
बहुत विद्रुम, बहुत मूला, ललित लटके कोर।
बहुरंग रेसमबरुहा, होत राग झकोर॥
स्याम स्यामा संग झूलत, सखी देत झुलाई।
सबै सरस सिंगार कीने रूप बरनि न जाई॥

श्रीराधा-माधवको झुलाते समय अनेकों गोपियोंके मधुर कण्ठसे निकली मधुर-ध्वनिसे सम्पूर्ण ब्रजमण्डल गुंजायमान हो उठा। गोपियोंको प्रेममें लीन देख श्रीराधाको झूलेपर छोड़ श्रीकृष्ण समीपके कुंजमें जा छिपे। कुछ ही पलोंके पश्चात् जब गोपियोंकी आँखोंसे मायाका परदा हटा, तब उन्होंने देखा कि झूला खाली पड़ा है। नीलमणि कहाँ चले गये, किसीको कुछ पता नहीं। श्रीराधासे सखियोंने पूछा—श्रीकृष्ण तो तुम्हारे संग बैठे थे, वे कहाँ गये और कब गये? श्रीराधाने कहा—मैं तो उनके प्रेममें लीन आँखें बन्दकर झूलेका आनन्द ले रही थी, मुझे उनके विषयमें कोई जानकारी नहीं है। अब तो सखियाँ सोचने लगीं, उन्हें कहाँ ढूँढ़ने चलें? ललिता सखी कहने लगी, चिन्ताका कोई कारण नहीं है, मुझे उनके सब स्थानोंका पता है, जहाँ-जहाँ वे जाते हैं, ललिता कहने लगी—

कामवन काहु दिन काहु दिन बरसाने
नन्दगाम काहु दिन नन्द घर धायेंगे।
छिद्रवन काहु दिन भद्रवन काहु दिन
काहु दिन मधुवन वृन्दावन आवेंगे॥
प्रेमी कहै काहु दिन दाऊजी दरस करैं
काहु दिन गोकुल में यमुना नहावेंगे।
गोवरधन राधाकुण्ड जतीपुरा गिरिराज
काहु दिन या चक्कर में श्रीकृष्ण मिल जायेंगे॥

इतना सुनकर बिशाखा सखी कहने लगी—हे ललिता! यह तो कई दिनोंकी लम्बी यात्रा है, उस समयतक उनके विरहमें कैसे रह पायेंगे। अब एक सखीने श्रीराधारानीको संकेतकर कहा—हे प्रियाजी!

कामवन कोटवन नन्दगाम बरसाने
गोवरधन राधाकुण्ड हम तौ न जायँगे।
जाके गिरिराज ब्रजराज को न खोज कबूँ
माया सिन्धु माय भूल डुबकी न लगाएँगे॥

गोकुल सुखरासी के वासी हैं हम करीम
गोकुल न पायें तो और कहाँ पायँगे।
मथुरा जी जावैं ना वृन्दावन धावें ना
चित्त शुद्ध होवे तो यहीं मिल जायँगे॥

इस सखीका कथन उस समय प्रमाणित हो गया, जब आस्था, निष्ठा और विश्वासके साथ सखियोंके स्मरण करते ही श्रीश्यामसुन्दर उनके मध्य प्रगट हो गये। यही तो है ब्रजका माधुर्य! इसी रससे सराबोर एक सखी कहने लगी—री सखियो!

अरी यही तो मोहन के माधुर्य सुधा की है रसधार।
निःस्सृत होती है कलरव से सुख सौरभ परिमल आगार॥
धन्य पुण्यमय ब्रजमण्डल भूमि, धन्य यह पावन देस।
चिर नित नूतन लीला करते जहाँ प्राणपति मधुर ब्रजेश॥
कुञ्ज कुञ्ज की लता बेलि में बिखरा मृदु माधुर्य अपार।
एक एक कलि की आभा में होता प्रभु का नित्य बिहार॥
थिरक रही है रूप माधुरी पल्लव पल्लव में साकार।
खेल रहा है यहाँ मुदित हो, श्री सुषमा का मधु संसार॥

इस प्रकार श्रीकृष्णके वैभव और माधुर्यकी चर्चा करते-करते साँझ ढलने लगी थी। अब श्रीकृष्णने श्रीराधाको संकेत कर कहा—हे ब्रजेश्वरी! मैं वनमें अपने गैया-बछड़े चरते हुए छोड़ आया था, उन्हें सँभालनेके लिये जानेकी अनुमति प्रदान करें। प्रियाजीकी सहमति प्राप्तकर कान्हा नन्दग्रामकी ओर प्रस्थान कर गये। इधर सखियाँ भी यमुनापुलिनपर अगले दिन भोर होते ही मिलनेकी आशामें अपने-अपने घरोंको लौट गयीं। प्रातःकाल पुनर्मिलनकी प्रतीक्षामें रात्रि बीत गयी। प्रातःकाल होते ही अपने घरका काम-काज निबटाकर एक-एक कर वे सखियाँ निर्धारित स्थानपर एकत्रित हो गयीं।

श्रीराधारानीसे परामर्शकर समस्त सखियोंने ब्रज-दर्शनका निश्चय किया। इसी निश्चयके अनुसार श्रीराधा और वे सखियाँ हर्षोल्लाससे भरी चल पड़ीं गोवर्धन ग्रामकी डगरपर। वहाँ पहुँचकर उन्होंने बड़े प्रेमसे गिरिराजके दर्शन किये। उनमेंसे एक सखी गिरिराज बाबाके वैभवका वर्णन करते हुए कहने लगी—

अजहु हरिदेव की पौर सदा बेई नंद नगोर को घोर मचै।
तट चन्द्र सरोवर गोपिन के, रस रास भी नंदकिसोर रचै॥
सुचि मानसी गंग तरंगन में, कवि नंदन बाँसुरी सोर जचै।
गिरिराज तरैठी में धेनु चरें, अरु सैल सिलान पै मोर नचै॥
जहँ गैयन ग्वालन टोल फिरें, मृग झुंडन में नित जोर जचै।
नित अम्ब कदम्बन कुंजन में, सिरि कृषण कथान को सोर मचै॥
जहाँ ब्यार में प्यार भरौं मँहके, गिरिराज के ओर ते छोर रचै।
जहँ कोयल के मृदु सोर उठे, सुन भाव विभोर हौं मोर नचै॥
मानसी गंग विराजत अंग में, देख तरंग मिलै सुख भारौ।
देवन कौहू जो देव बन्यौ, अस देवता हैं गिरिराज हमारौ॥

(कुम्हेरिया)

इस प्रकार श्रीगिरिराजजीकी वन्दना और नमन करते हुए समस्त गोपियाँ चल पड़ीं श्रीवृन्दावनकी ओर। चलते-चलते ब्रजके सौन्दर्यसे अभिभूत होकर एक सखी कहने लगी—देखो सखियो!

कितना भरा अतुल आकर्षण कितना गर्मित है माधुर्य।
ब्रज में कण कण के अन्तर्गत कितना भाव भरित सौन्दर्य॥

इसी भाव-समाधिमें लीन गोपियोंने श्रीवृन्दावनमें प्रवेश किया। उनमेंसे एक गोपी प्रेमावेशके वशीभूत होकर इस प्रकार अपने मनोभाव प्रगट करने लगी—

एक ब्रज रेणुका पै चिन्तामनि वारि डारौ।
लौकन को वारौं, सेवा कुञ्ज के विहार पै॥
लतन की पातन पै, कल्पवृक्ष वारि डारौं।
रम्भाहु को वारि डारौं, गोपिन के द्वार पै॥
ब्रज पनिहारिन पै, शचि रति वारि डारौं।
बैकुण्ठहि वारि डारौ कालिन्दी घाट पै॥
कहै अभयराम एक राधेजू को जानत हौं।
देवन को वारि डारौं नन्द के कुमार पै॥

और सचमुच ही सम्पूर्ण ब्रजमण्डल भगवान् श्रीकृष्ण और उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानीकी प्रेममयी लीलाओंकी वह अलौकिक धरा है, जहाँ पहुँचकर मनुष्य असीम आनन्द और आनन्दके महासागरमें डूब जाना चाहता है। इसी कारण ब्रजवासी सदैव गाते रहते हैं—

'प्रिय लागे मोहि ब्रज की बीथिन।'

मनका संयम

(श्रीगौतमसिंहजी पटेल)

प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी नियतमानसः।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति॥

(गीता ६। १४-१५)

जिसका अन्त:करण शान्त है, जो भयरहित है और जो ब्रह्मचर्यव्रतमें स्थित है, ऐसा सावधान योगी 'मनका संयम' करके मुझमें चित्त लगाता हुआ मेरे परायण होकर बैठे। वशमें किये हुए मनवाला योगी इस प्रकार आत्माको निरन्तर मुझ परमेश्वरके स्वरूपमें लगाता हुआ मुझमें रहने-वाली परमानन्दकी पराकाष्ठारूप शान्तिको प्राप्त होता है।

मनः संयम्य अर्थात् 'मनका संयम' करके उसे मुझमें ही लगा दे। इसका तात्पर्य यह है कि सांसारिक वस्तु, व्यक्ति, परिस्थिति, घटना आदिको लेकर मन-मस्तिष्कमें जो संकल्प-विकल्परूपसे चिन्तन-मनन होता है, उससे मनको मोड़कर एक मुझमें ही लगाता रहे। दूसरे शब्दोंमें मनको संसारकी ओरसे मोड़कर केवल मेरे स्वरूप-चिन्तन, मेरी लीला, गुण, महिमा, प्रभाव आदिके चिन्तन-मननमें ही लगा दे। मन-मस्तिष्कमें जो कुछ भी चिन्तन-मनन होता है, वह प्राय: भूतकालका होता है तथा कुछ भविष्यकालका भी होता है और वर्तमानमें साधक अपना मन परमात्मामें लगाना चाहता है। भूतकालकी बात, भविष्यकालकी बात और वर्तमानकालकी बात घटना, वस्तु, व्यक्ति, पदार्थ, परिस्थिति आदि तीनों अभी नहीं है। जिस संसारका चिन्तन हो रहा है, वह पहले नहीं था, पीछे नहीं रहेगा और अभी भी नहीं है। लेकिन जिन परमात्माका चिन्तन करना है, वे परमात्मा पहले भी थे, अब भी हैं और आगे भी रहेंगे। इसलिये सांसारिक वस्तुओंसे हटाकर मनको परमात्मामें लगा देना चाहिये; क्योंकि भूतकालका कितना ही चिन्तन किया जाय, कोई लाभ नहीं तथा भविष्यकालका कितना भी चिन्तन किया जाय, वह काम अभी होगा नहीं और भूत-भविष्यका चिन्तन करते रहनेसे वर्तमानका ध्यान तो होगा नहीं। इसका आशय यह है कि सब ओरसे हाथ खाली-का-खाली ही रहेगा। निष्कर्ष यह है कि हमारा लक्ष्य परमात्म-चिन्तन ही है, सांसारिक चिन्तन नहीं। इस कारण हमें सदा-सर्वदा, नित्य-निरन्तर परमात्म-चिन्तन ही करते रहना चाहिये।

जिसका मनपर अधिकार है, वह '**नियतमानसः**' है। साधक 'नियतमानस' तभी हो सकता है, जब उसका मन-मस्तिष्क केवल-और-केवल परमात्मामें ही लगा रहता है, परमात्माके अतिरिक्त और किसीमें नहीं लगा रहता। जबतक उसका सम्बन्ध सांसारिक पदार्थोंके साथ बना रहता है, तबतक उसका मन नियत नहीं हो सकता। साधक अपने-आपको ध्यानी ही माने। मैं तो केवल ध्यानी हूँ और ध्यानके माध्यमसे ही परमात्माकी प्राप्ति करना मेरा परम लक्ष्य है, सांसारिक ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त करना मेरा कोई उद्देश्य नहीं। इस भाँति अहंताका परिवर्तन होनेपर मन स्वाभाविक ही नियत हो जायगा।

जो कोई मनुष्य विवेकशील बुद्धिरूप सारथीसे सम्पन्न और मनरूप लगामको वशमें रखनेवाला है, वह संसार-मार्गके पार पहुँचकर परब्रह्म पुरुषोत्तमके उस सुप्रसिद्ध परम पदको प्राप्त हो जाता है। जैसे दुष्ट घोड़ोंसे जुते हुए रथको अच्छा सारथी बड़ी सावधानीसे चलाकर अपने गन्तव्य स्थानपर ले जाता है, वैसे ही साधकको चाहिये कि बड़ी सावधानीके साथ अपने मनको वशमें रखे, जिससे योग-साधनमें किसी प्रकारका विघ्न न आने पाये और वह परमात्माकी प्राप्तिरूप लक्ष्यपर पहुँच जाय।

जिसका दूरतक दौड़ लगानेवाला और अनेक विषयोंकी ओर जानेवाला कामनायुक्त संशयात्मक मन भलीभाँति वशमें हो जाता है, वह मनुष्य इहलोकमें और परलोकमें भी सुखी होता है। जिन्होंने अपने मनको वशमें नहीं किया है, वे विभिन्न विषयोंकी ओर प्रेरित हुई दुर्निवार्य इन्द्रियोंद्वारा आत्माका साक्षात्कार नहीं कर सकते।

यम, नियम, दान, स्वधर्मपालन, वेदाध्ययन, सत्कर्म और ब्रह्मचर्य आदि श्रेष्ठ व्रत—इन सबका अन्तिम फल यही है कि मन एकाग्र हो जाय, भगवान्‌में लग जाय। मनका समाहित हो जाना ही परम योग है। सभी इन्द्रियाँ मनके वशमें हैं। मन किसी भी इन्द्रियके वशमें नहीं है। यह मन बलवान्‌से भी बलवान्, अत्यन्त भयंकर देव है। जो इसको अपने वशमें कर लेता है, वही यथार्थमें

इन्द्रियोंका विजेता है। मनको निरोग हुआ तब जानना चाहिये, जब हृदयमें वैराग्यका बल बढ़ जाय, उत्तम बुद्धिरूपी भूख नित नयी बढ़ती रहे और विषयोंकी आशारूपी दुर्बलता मिट जाय। मनको वशमें करके एक—श्रीभगवान्‌की ही सेवा करनी चाहिये। इसीसे जन्म-मरणके नाशरूप परमार्थरूपी परम फल मिलता है। अर्थात् वह भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है।

'संयम' अथवा 'मनका संयम' शब्द अथवा शब्दसमूह मनोनिग्रह, चित्तवृत्तिनिरोध, आत्मनियन्त्रण, बुराईसे बचनेकी क्रिया तथा योगके क्षेत्रमें ध्यान, धारणा और समाधि तीनोंका वाचक है। मनको विषयोंसे हटाकर संयमाग्निमें झोंकनेवाले साधक अपेक्षाकृत अधिक समयतक परमात्मयुक्त रहते हैं। जिसकी मन और इन्द्रियाँ संयमित नहीं हैं, वह परमात्माको प्राप्त नहीं कर सकता। वस्तुतः इन्द्रियोंके विषयोंकी ओरसे मनकी प्रवृत्तिको रोककर उसे सत् प्रवृत्तियोंमें लगाना ही 'मनका संयम' है। बिना संयमका आश्रय लिये किसी भी साधकको मुक्ति नहीं मिल सकती। मनका असंयम विपत्तियोंका मार्ग है और उसे अपने वशमें कर लेना सुख-सम्पत्तियोंका मार्ग है। मानसिक असंयम आपदाओंका और मानसिक संयम सम्पदाओंका प्रमुख अंग है। सकल विषयोंकी आशाका भी त्याग कर देना 'मनका संयम' है। मनोनिग्रहरहित साधन व्यर्थ हो जाता है, इससे परमेश्वरकी प्राप्ति नहीं हो पाती। मनोनिग्रहसे ही इस भवसागरको पार किया जा सकता है। अतएव परब्रह्म-प्राप्तिहेतु 'मनका संयम' नितान्त आवश्यक है।

सेवा-धर्म

(डॉ० श्रीनरेशकुमारजी शास्त्री, एम०ए०, पी-एच०डी०)

'सेवा' यह शब्द कहनेमें बहुत सरल तथा प्रिय प्रतीत होता है, परंतु आचरणमें सेवा-कार्य तलवारकी धारपर चलनेके समान कठिन है। महाराज भर्तृहरिने कहा है—'**सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः**' (नीति० ५८) अर्थात् सेवाधर्म परम गहन है, कष्टसाध्य है, योगी भी सेवा-धर्मका पालन बड़ी कठिनतासे ही कर पाते हैं, परंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं लिया जाना चाहिये कि सेवा-धर्मका पालन किया ही नहीं जा सकता, अवश्य किया जा सकता है, केवल थोड़ेसे प्रयास और अभ्यासकी आवश्यकता है।

'सेवा' शब्दके परिचर्या, उपासना, भक्ति, पूजा, आराधना आदि अनेक पर्याय हैं। वैष्णवोंके वैरागी सम्प्रदायमें भगवान्‌के नामोंके पीछे 'दास' लगाकर सीतारामदास, रघुबीरदास, राघवदास, भरतदास, तुलसीदास तथा सूरदास आदि कहनेकी जो परम्परा चली आयी है, वह इस दास-भक्ति या सेवावृत्तिसे ही सम्बन्धित है। आजकल 'सेवावृत्ति' शब्द नौकरी-व्यवसायके लिये भी प्रयुक्त होने लगा है। पर 'सेवा' का एक अन्य अर्थ भी है, निःस्वार्थभावसे किसी असहायकी 'तन-मन-धनसे—मनसा-वाचा-कर्मणा' सहायता करना। यहाँ हमारे विचारका सम्बन्ध इसी अर्थवाले 'सेवा' शब्दसे है। जिसे लोकमें 'परोपकार' भी कहा जाता है। इसे ही भगवान् कृष्णने गीतामें निष्कामकर्म कहा है, जिस सेवा-धर्मका पालन करते हुए मनुष्य कर्मके बन्धनमें नहीं बँधता—'**कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित् करोति सः**' (गीता ४।२०)। त्याग-भाव अथवा निष्कामकर्मकी प्रवृत्तिके बिना कभी भी मनुष्यमें सच्ची सेवाकी भावना नहीं आ सकती। यजुर्वेदके चालीसवें अध्यायके पहले दो मन्त्रोंमें भगवान् स्वयं स्पष्टरूपसे कहते हैं—'**....त्यक्तेन भुञ्जीथाः**'—'**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः। एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे**' अर्थात् संसारके पदार्थोंका त्यागपूर्वक भोग करते हुए मनुष्य जो भी कर्म करता है, वे कर्म सेवाभावसे, त्यागभावसे, परोपकारकी भावनासे तथा यज्ञकी भावनासे प्रेरित होनेके कारण उस मनुष्यमें लिप्त नहीं होते। उसके वे कर्म शरीरकी स्वाभाविक चेष्टामात्र बनकर रह जाते हैं, उन कर्मोंसे मनुष्यके मनमें कर्मकी वासना उत्पन्न नहीं होती और यह वासना ही जन्म-मरणके चक्रमें मनुष्यको डालती है, अतः इस प्रकार सेवाभावसे किये गये ये निष्कामकर्म अन्ततः मनुष्यको संसार-सागरसे पार उतारनेवाले बन जाते हैं और उसे मुक्तिके द्वारतक पहुँचा देते हैं।

आश्चर्य है कि जिन सेवाकार्योंको करते हुए हम अपने लिये कुछ नहीं चाहते, पुनरपि हमें वह सब कुछ

अपने-आप मिल जाता है, जिसके लिये योगी लोग अपना सर्वस्व योगसाधनामें समर्पित करते हैं। हम कुछ नहीं माँगते, परंतु प्रभु सब कुछ दे देते हैं। जहाँ बिना माँगे मोती मिले फिर ऐसे सेवाकार्योंसे क्यों विमुख रहा जाय, उन्हें तो और भी उत्साहसे तथा प्रयत्नसे करना चाहिये।

सेवाभावी मनुष्य निःसन्देह सम्पूर्ण समाजका हितैषी तथा आदर्श होता है। उसका जीवन अपने अथवा अपने परिवारतक ही सीमित नहीं होता, उसके लिये तो सारी पृथ्वी ही उसका परिवार होती है—'**उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्**'—'उदारचित्त मनुष्योंके लिये तो सारी पृथ्वी ही उसका कुटुम्ब है।' सारा संसार ही उसका मित्र है, उसके लिये कौन अपना और कौन पराया? सब उसके हैं और वह सबका है। '**सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु**' तात्पर्य यह कि सभी दिशाओंमें उसके मित्र-ही-मित्र होते हैं, शत्रु कोई नहीं होता। वह तो सदा सब प्रकारसे सबका हित ही चाहता है और केवल चाहता ही नहीं, अपितु अपनी शक्ति और सामर्थ्यके अनुसार उनका हित-सम्पादन भी करता है।

मनुष्य संसारका सर्वश्रेष्ठ प्राणी कहलाता है। उसकी श्रेष्ठता केवल तर्क-वितर्ककी क्षमतापर ही निर्भर नहीं करती, अपितु इस बातपर निर्भर रहती है कि वह संसारके अन्यान्य प्राणियोंके—इतर मनुष्यों, पशु और पक्षियोंके कितने काम आ सकता है, उनकी कितनी सेवा कर सकता है।

तनिक प्रभुकी सृष्टिकी ओर निहारिये, सर्वत्र सेवा-ही-सेवा दिखायी पड़ेगी, सूर्य अपनी किरणोंको फैलाकर अन्धकारको ही दूर नहीं करता, अपितु अनेकविध अन्नों और वनस्पतियोंके उपजानेमें भी सहायक होता है। इसीसे सभीका जीवन जीवन्त होता है। क्या नदी, वृक्ष, लता, पर्वत—सभी परहितमें नहीं लगे हुए हैं? यही तो प्रभुका यज्ञ है। आइये, आप भी इसमें सम्मिलित हो जायँ, अपनी आहुति भी इसमें डाल दें। निःसन्देह आपकी आहुति विफल नहीं जायगी। दीन-दुखियोंके अंग बननेमें आपका दिया गया एक-एक क्षण आपको अपार सन्तोष देगा। दीन-दुखियों और असहायोंकी सेवासे आपको वह परम आनन्द मिलेगा, जिसके लिये योगियोंको भी कठोर तप करने पड़ते हैं। दीन-दुखियोंमें हीनताकी भावना न होकर सच्ची श्रद्धापूर्वक भगवद्भावना रखनेसे ही वह सेवा याज्ञिक क्रिया बन सकती है और तब वह ब्रह्मार्पणकी दृष्टिसे ब्रह्माग्निमें दी गयी आहुतिके समान फलदायक होकर सीधे ब्रह्मतक पहुँचा सकती है। गौ, विद्वान्, ब्राह्मण, सन्त, महात्मा, माता-पिता, अतिथि और गुरु आदिकी सेवा तो सर्वथा भगवद्भावसे की जानी चाहिये। एक क्षण भी उनमें भगवान्‌से भिन्न दृष्टि नहीं रखनी चाहिये और सत्य भी यही है कि भगवान् ही कृपा करके गौ, ब्राह्मण, सन्त आदिके रूपमें सेवाका सौभाग्य प्राप्त कराते हैं, इसीसे मानसमें—

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मोतें संत अधिक करि लेखा॥

(३।३६।३)

तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥

(२।१२९।८)

—ऐसे कथनोंकी बार-बार आवृत्ति होती आयी है।

सेवाभावसे समर्पित जीवनके द्वारा आपका हृदय इतना निर्वैर, पवित्र, विशाल और उदार होगा कि उसमें आप समस्त संसारके दुःखोंको समेटकर उनकी झोली सुखोंसे परिपूर्ण कर देना चाहेंगे। आपका व्यक्तित्व संकुचित सीमाओंको पार करके असीम और महान् बन जायगा। फिर आप अनुभव करेंगे—

अयुतोऽहमयुतो मे आत्मायुतं मे चक्षुरयुतं मे श्रोत्रमयुतम्।
मे प्राणोऽयुतो मेऽपानोऽयुतो मे व्यानोऽयुतोऽहं सर्वः॥

'मैं अब असीम बन गया हूँ, मेरा आत्मा असीम हो गया है। मेरे नेत्र, मेरे कान, मेरे प्राण, मेरा अपान, मेरा व्यान—सभी अंग-प्रत्यंग संकुचित परिधिसे निकलकर असीम, विशाल, अपार और उदार हो गये हैं। मेरा रोम-रोम अब विश्वकल्याण और परहितमें सार्थक हो रहा है। मैं अब केवल स्वयंतक सीमित नहीं हूँ, अपितु विश्वरूप हो गया हूँ।'

निःस्वार्थ सेवामें कितना आनन्द है, कितना सुख है और कितना सन्तोष है? यह शब्दोंमें वर्णन करने योग्य नहीं है। उसकी अनुभूति तो सेवा-फलको चखनेपर ही होगी। भले काममें देरी कैसी? आइये, और निराश्रयोंके आश्रय बनकर निःस्वार्थ-भावसे अपने तन-मन-धनको असहायोंकी सहायतामें लगा दीजिये। सेव्य-सेवकभावसे, दास्य-दासभावसे पूज्य-पूजकभावसे प्रभुके प्रभुमय सेवा-धर्ममें सम्मिलित हो जाइये।

निम्बार्क-सम्प्रदायकी सेवा-भक्ति

(पं० श्रीरामस्वरूपजी गौड़ 'निम्बार्कभूषण')

अङ्गे तु वामे वृषभानुजां मुदा
विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा
स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम्॥

(वेदान्तकामधेनु ५)

अर्थात् जो श्यामसुन्दर श्रीकृष्णके वामांगमें प्रसन्नतापूर्वक विराजमान हो रही हैं, जिनका रूप-शील-सौभाग्य अपने प्रियतमके सर्वथा अनुरूप है, सहस्रों सखियाँ सदा जिनकी सेवाके लिये उद्यत रहती हैं, उन सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओंको देनेवाली देवी वृषभानुनन्दिनी श्रीराधाका हम सदा स्मरण करें।

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यजीने नित्यनिकुंज वृन्दावनमें सखीभावसे सेवित युगल प्रभु राधाकृष्णकी सेवाको ही परम सुखानन्दकर तथा प्राप्त्यर्थ निर्देशित किया है। परम प्रेमप्रवण वृन्दावननिकुंज एवं परम प्रेम सखीभावकी अधिष्ठात्री देवी पराश्री राधाजी हैं। अत: राधाजीकी सेवा तथा कृपासे ही वृन्दावननिकुंजमें सखीसदृश प्रेमरसका भाव प्रवाहित होता है। उन्होंने श्रीकृष्णकी रसरतिके लिये वृषभानुजा श्रीराधाजीकी भक्तिका संकेत किया है। श्रीराधाष्टकके फलितार्थ श्लोकमें कहा है—

सुतिष्ठन्ति वृन्दावने कृष्णधाम्नि।
सखीमूर्तयो युग्मसेवानुकूलाः॥

(राधाष्टकम् ९)

श्रीप्रियाजीकी कृपासे दिव्य धाम वृन्दावनके सखीस्वरूप भावसे युगल सरकार श्यामा-श्यामकी अन्तरंगसेवाका सौभाग्य मिलेगा। युगल सरकारकी सेवाको साधनेके लिये श्रीनिम्बार्काचार्यजीने भगवत् स्तुतियोंमें पर्याप्त साधनाके संकेत किये हैं। प्रभुके प्रति हार्दिक निष्ठाभाव, गुरुप्रदत्त भगवद्भक्तिमार्गसे हरिशरणागत होकर नाम-जप,भजन, प्रभुलीला, स्मरण, ध्यान तथा गुणकीर्तन आदि भावप्रवृत्तियोंकी निरन्तर स्वाभाविक स्थिति हो जानेसे राधा-माधवका हार्दिक रसभाव सिद्ध होगा।

जीव अनादि मायासे युक्त होनेसे जीवनकी विभिन्न प्रवृत्तियोंमें प्रवृत्त है। जीवको अज्ञानसे जो ये कर्मबन्धनका आवरण हो रहा है, वह श्यामा-श्याम प्रभुकी निरन्तर उपासनासे ही निरावृत होगा।

नान्या गतिः कृष्णपदारविन्दात्
सदृश्यते ब्रह्मशिवादिवन्दितात्।
भक्तेच्छयोपात्तसुचिन्त्यविग्रहा-
दचिन्त्यशक्तेरविचिन्त्यसाशयात्॥

(वेदान्तकामधेनु ८)

अर्थात् ब्रह्मा और शिव आदि देवेश्वर भी जिनकी वन्दना करते हैं, जो भक्तोंकी इच्छाके अनुसार परम सुन्दर एवं चिन्तन करनेयोग्य लीलाशरीर धारण करते हैं, जिनकी शक्ति अचिन्त्य है तथा जिनके अभिप्रायको उनकी कृपाके बिना कोई नहीं जान सकता, उन श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके सिवा जीवकी दूसरी कोई गति नहीं दिखायी देती।

प्रणतजनोंके इच्छानुरूप भगवान् विभिन्न रूपसे अवतार-विग्रह धारणकर अहैतुकी कृपा करते हैं। श्रीराधाकृपाके अतिरिक्त संसारके इस माया-मलसे निकालकर अपने चरणोंमें शरण देनेवाला कोई अन्य नहीं है। श्रीसर्वेश्वर कृष्ण ब्रह्मा-शिव आदि समस्त देवताओंके भी वन्दनीय हैं। सनकादि ऋषियों और देवर्षि नारदजीने हमें इन्हीं श्रीकृष्णकी उपासनाका निर्देश किया है।

उपास्यरूपं तदुपासकस्य च
कृपाफलं भक्तिरसस्ततः परम्।
विरोधिनो रूपमथैतदाप्ते-
र्ज्ञेया इमेऽर्था अपि पञ्च साधुभिः॥

(वेदान्तकामधेनु १०)

अर्थात् उपासनीय परमात्मा श्रीकृष्णका स्वरूप, उनके उपासक जीवका स्वरूप, भगवान्‌की कृपाका फल, तदनन्तर भक्तिरसका आस्वादन तथा भगवत्प्राप्तिके विरोधीभावका स्वरूप—इन पाँचका ज्ञान श्रेष्ठ साधकोंको प्राप्त करना चाहिये।

मानवजीवनमें सामान्यत: ईश्वर-आस्था, सत्य, शील, सदाचार, दया, विनय, सहिष्णुता, कर्तव्य एवं मर्यादानिर्वाहको

धर्म कहा गया है। इन धर्मतत्त्वोंको मनीषियोंने विशद रूपसे व्याख्यायित किया है। यह श्रेय कर्म ही जगजीवनकी सुखद समृद्धि करते हैं। इसके विपरीत व्यक्तिगत स्वार्थपरायण कर्म, झूठ, चोरी, अनाचार, व्यभिचार, ठगी, हिंसा, क्रूरता आदि अनाचार कहे गये हैं, जो पतनकारक हैं।

जो कोई प्रभु के आश्रय आवै। सो अन्याश्रय सब छिटकावै॥
विधि-निषेध कें जे जे धर्म। तिनिकों त्यागि रहें निष्कर्म॥

वस्तुतः मनुष्यद्वारा यथायोग्य स्थितिसे ऊहापोह, संकल्प-विकल्परहित निष्काम भावसे धर्मका व्यवहार ही भगवान्‌की प्रथम सेवा है। निम्बार्काचार्यपीठाधीश्वर श्रीहरिव्यास देवाचार्यजीने महावाणीमें सामान्य मानवधर्मसे लेकर श्रीवृन्दावनधामनिकुंजके सेवा-परिकरतकके सेवा-क्रमको व्यक्त किया है, जिसके पालनेसे मनुष्य वृन्दावन-धाममें राधामाधवकी सेवाका सान्निध्य पा सकता है—

झूठ-क्रोध-निन्दा तजि देहीं। बिन प्रसाद मुख और न लेहीं॥
सब जीवनि पर करुना राखें। कबहुँ कठोर वचन नहिं भाखें॥
मन माधुर्य-रस माहि समोवें। घरी पहर पल वृथा न खोवें॥
सतगुरुके मारग पगु-धारें। हरि सतगुरु बिचि भेद न पारें॥
ए द्वादश-लच्छिन अवगाहें। जे जन परा परम-पद चाहें॥

प्रथम चरणमें लौकिक जगत्‌में रहते हुए सेवाभक्तिके प्राथमिक व्यवहार हैं। प्रभुमें आश्रय चाहनेवाले प्रभुमें अनन्य भाव धारण करें। संकल्प-विकल्परहित निष्काम कर्म करें। झूठ, क्रोध, निन्दा, छल, कपट, हिंसा और अहंकारको छोड़ें, प्रभु-अर्पित प्रसादी ग्रहण करें। सब जीवोंपर करुणाका भाव रखें। कभी किसीके प्रति कठोर वचन न बोलें, प्रसन्नचित्त मधुर व्यवहार करें, व्यर्थ समय न खोयें, अपने कर्तव्यकर्म हरिभजन तथा सत्कर्म करते रहें। सद्‌गुरुका आश्रय लें, सद्‌गुरुको हरिका अनन्य तथा अन्तरंग परिकर समझें, परम प्रेम चाहनेवालोंको इन बारह सेवा-लक्षणोंका अनुपालन करना है।

महावाणीमें पुनः कहा गया है—

जाकें दस पैडी अति दृढ़ि है। बिन अधिकार कौन तहाँ चढ़ि है॥
पहले रसिक जनन को सेवें। दूजी दया हिये धरि लेवें॥
तीजी धर्म सुनिष्ठा गुनि है। चौथी कथा अतृप्त ह्वै सुनि है॥
पंचमि पद पंकज अनुरागें। षष्ठी रूप अधिकता पागें॥
सप्तमि प्रेम हिये विरधावें। अष्टमि रूप ध्यान गुन गावें॥
नवमि दृढ़ता निश्चै गहिबे। दसमी रसकी सरिता बहिबे॥
या अनुक्रम करि जे अनुसरहीं। सनै सनै जगतें निरबरहीं॥
परमधाम परिकर मधि बसहीं। श्रीहरिप्रिया हितू संग लसहीं॥

जिनको परम प्रेमपथमें आगे बढ़ना है, उन्हें हरिअनुरागी परम रसिक सन्तका आश्रय लेकर रसरसेश्वर परम प्रभु राधा-कृष्णके भजनका अधिकार लेना चाहिये। इस अधिकारी रसिकको परम भागवतभक्त रसिकजनोंकी सतत सेवा करनी चाहिये। हृदयमें सरलता, तरलता, नम्रता, करुणा, दया आदि गुण स्वभावतः धारण करने चाहिये। इस दैन्यतापूर्ण परम प्रेमप्रवण वैष्णवधर्मसे सहज सुनिष्ठा स्थापित होती है। तब भगवद्-भागवत लीला-कथाको अनुरागसे सुननेकी लालसा उत्पन्न होती है। परम प्रभुके पद-पंकजमें हार्दिक अनुराग होने लगता है। भक्त तथा भगवान्‌के लीलास्वरूपकी झलकियाँ प्रवृत्त होने लगती हैं। हृदयमें श्यामा-श्यामके प्रेमका सागर उमड़ने लगता है और आठवें स्तरपर भगवान्‌के वास्तविक लीलास्वरूप तथा गुणमाहात्म्यका ध्यानमें दर्शन होने लगता है। इस क्रमसे शनैः-शनैः भगवान्‌में स्वाभाविक भाव स्थापित होते-होते संसारसे अनासक्ति तथा निर्भयता हो जाती है। संसारके सम्बन्ध छूट जाते हैं और परम धाम वृन्दावननिकुंज श्रीश्यामा-श्यामके सेवा-परिकरमें प्रवेश प्राप्त हो जाता है।

निम्बार्क-सम्प्रदायके परम्परागत पीठाचार्य तथा अनुगत भक्तरसिकोंने सामाजिक जीवनमें मानवसेवाधर्मसे लेकर परम प्रेमकी आध्यात्मिक गहनतातक सेवाभक्तिका अवलम्बन किया है और जीवनमें भगवत्प्राप्तिरूप परम परमार्थको प्राप्त किया है। इनमेंसे कइयोंने साहित्यिक अभिव्यक्ति तथा विशिष्ट अनुभव वचन कहे हैं। श्रीकेशव काश्मीरी भट्टाचार्यजी, श्रीभट्टजी, श्रीहरिव्यास देवाचार्यजीने अपने वाणी-साहित्यमें वृन्दावननिकुंज राधा-माधवकी अन्तरंग सेवाभक्तिका दर्शन कराया है। स्वामी श्रीपरशुराम देवाचार्यजीने अपने साहित्यसागरसे लौकिक जीवनमें धर्म तथा निकुंजभवनतककी सेवाका मार्गदर्शन कराया है। श्रीवृन्दावन देवाचार्यजी, गोविन्द-शरण

देवाचार्यजी तथा जगद्गुरु निम्बार्काचार्य श्रीश्रीजी श्रीराधासर्वेश्वरशरण देवाचार्यजीने मानवीय धर्म-उपदेशके साथ राधामाधवके निकुंजरसका पान कराया है।

सखीभावको धारणकर अन्तः-बाह्य प्रवृत्तिसे श्रीराधाकृष्णके सेवास्मरणमें लगे रहना तथा अपने-अपने परिवेशसे सामंजस्य बैठाकर लौकिक जीवनमें मर्यादाका निर्वाह करना—यही निम्बार्क-परम्पराका निहित उद्देश्य है।

श्रीश्यामा-श्याम श्रीराधाकृष्ण-निकुंजबिहारीके निकुंज-भावस्थ मन्दिरोंमें श्रीविग्रहकी सेवाटहल अपने-अपने सेवादायित्वके अनुसार नित्यप्रति अष्टयाम की जाती है, जो मन्दिरोंके अष्टयाम सेवाप्रवृत्तिमें प्रचलित है।

वर्षके परम्परागत व्रतोत्सव अपने-अपने स्तरपर हार्दिक भावसे वैष्णवोंद्वारा सम्पन्न होता है।

इस तरह निम्बार्कसम्प्रदायमें सनातनधर्म और वैष्णवपरम्पराका सेवाधर्म प्रतिष्ठित है।

भारतीय कलाके प्रतिमानोंमें शिवलिंग और भगवान् शिव

(विद्यावाचस्पति डॉ० श्रीराजेशजी उपाध्याय नार्मदेय, एम० ए०, पी-एच० डी०)

भगवान् शिव अनादि देवता हैं। ये अत्यन्त महिमाशाली एवं रहस्यमय देव हैं। शिव अपनी भक्तप्रियता, दयालुता, सर्वकल्याणकारिता आदिके रूपमें हमारे सामने अति प्रसिद्ध रहे हैं और सर्वदा रहेंगे।

देवप्रतिमाओंका धर्मसे बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। शिव प्राचीन देवोंमें सबसे प्राचीन हैं। प्राचीन सभ्यताके जो अवशेष भूगर्भ-खुदाईमें प्राप्त हुए हैं, वे शिवलिंग एवं शिवसे सम्बन्धित प्रतिमाएँ ही हैं। मोहनजोदड़ोसे प्राप्त मुहरपर शिवकी ही मूर्ति है। इसमें पशुपतिनाथ शिव पशुओंसे घिरे हुए हैं। सिन्धु घाटीके लोग लिंगपूजासे परिचित थे। वैदिक रुद्र ही शिवके स्वरूप हैं। सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष एवं ईशान शिवके ये पाँच रूप हैं। महाकाव्योंके युगमें शिवकी उपासना लोकप्रिय हो चुकी थी। उज्जैनके आहत सिक्कोंमें शिव-लिंगोद्भव मानव-रूपमें दृष्टिगोचर होते हैं। भारतीय कलामें शैव-प्रतिमाओंका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है—

१. रूप-प्रतिमा, २. लिंग-प्रतिमा।

रूप-प्रतिमाओंमें शान्त या सौम्य मूर्तियाँ और लिंग-प्रतिमाओंमें अशान्त या उग्र मूर्तियाँ आती हैं।

शान्त या सौम्य मूर्तियाँ—(१) अनुग्रह-मूर्ति, (२) नृत्य-मूर्ति, (३) दक्षिण-मूर्ति, (४) कंकाल भिक्षाटन या शिरच्छेद-मूर्ति, (५) विशिष्ट मूर्तियाँ, (६) पौराणिक तथा दार्शनिक मूर्तियाँ।

अशान्त या उग्रमूर्तियाँ—(१) कामान्तक-मूर्ति, (२) संहार-मूर्ति, (३) गजासुरसंहार-मूर्ति, (४) कालारि संहार-मूर्ति, (५) त्रिपुरान्तक-मूर्ति, (६) शरभेश-मूर्ति, (७) अन्धकान्त-मूर्ति आदि।

भैरव-मूर्तिका वर्गीकरण इस प्रकार हुआ है—(१) सामान्य-भैरव, (२) बटुक-भैरव, (३) स्वर्णाकर्षण-भैरव, (४) चतुष्पट-भैरव, (५) वीरभद्र-भैरव, (६) जालन्धर, (७) अघोर मूर्ति आदि।

लिंग-प्रतिमा—(१) चलमूर्तियाँ, (२) मृण्मय मूर्तियाँ, (३) लौहज मूर्तियाँ, (४) रत्नज मूर्तियाँ, (५) दारुज मूर्तियाँ, (६) शैलज मूर्तियाँ, (७) क्षणिक मूर्तियाँ।

अचल मूर्तियाँ—(१) स्वयम्भू, (२) दैविक, (३) आर्ष, (४) दानव, (५) मानुष, (६) लिंगपीठ आदि।

इन मूर्तियोंका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—अनुग्रह-मूर्तियाँ शिवका कल्याणकारी शान्त रूप प्रदर्शित करती हैं। अनुग्रह-मूर्तियोंमें एक हाथको अभय और दूसरेको वरद मुद्रामें बतलाया जाता है—शिव अपने भक्तोंको वरदान देते हैं। इस मूर्तिकी यह विशेषता होती है कि इसमें शिव पार्वतीके पासमें खड़े होते हैं। वरदान पानेवाले भक्तकी कथा भी इसमें पत्थरोंमें शिवके साथ उकेरी गयी है। अनुग्रह मूर्तियाँ शिवकी कई प्रकारकी हैं—जैसे—(१) विष्णु-अनुग्रह, (२) किरातार्जुनीय-अनुग्रह, (३) रावणानुग्रह, (४) चण्डेश-अनुग्रह, (५) विघ्नेश-अनुग्रह।

विष्णु-अनुग्रह मूर्तिमें शिवकी कृपासे असुरोंके वधके लिये विष्णुको चक्र प्राप्त करते दिखाया गया है।

विष्णुने पूजामें एक कमल घट जानेपर अपना एक नेत्र निकालकर शिवको अर्पित किया था। यह दृश्य कांजीवरम्के केदारनाथ मन्दिर एवं मथुराके एक मन्दिरमें देखनेयोग्य है।

अर्जुन-अनुग्रहमूर्तिमें महाभारतके किरातार्जुन-युद्धकी कथाका अंकन हुआ है। अर्जुनने कौरवोंको परास्त करनेके लिये घोर तपस्याद्वारा पाशुपत-अस्त्रकी प्राप्ति की। किरातवेषधारी शिवसे अर्जुनका युद्ध हुआ था।

रावण-अनुग्रहमूर्तिमें कुबेरको जीतकर रावण जब लंका लौट रहा था, उस समयका चित्रांकन है। कैलास-शृंगके पास उसे एक मनोहर उद्यान दिखायी दिया। वहाँ विहार करनेकी इच्छा उसके मनमें उठी, पर उसके निकट पहुँचनेपर उसका विमान टस-से-मस नहीं हुआ। नन्दिकेश्वरने बताया—उमा-महेश्वर पर्वतपर विहार कर रहे हैं और किसीको वहाँसे निकलनेकी अनुमति नहीं है। यह सुनकर रावण ठहाका मारकर हँसा और शिवजीकी हँसी उड़ायी। नन्दिकेश्वरने उसे शाप दिया कि उसीकी आकृतिवाले वानरोंसे उसका नाश होगा। रावणने अपनी बीसों भुजाओंसे पर्वत उखाड़नेकी कोशिश की और पर्वत उठा लिया। घबराकर भगवती उमा शिवसे लिपट गयीं। शिवजीने अपने पैरके अँगूठेसे न केवल पर्वतको दबाया; बल्कि रावणको भी उसके नीचे दबा दिया। रावणकी आँखें खुलीं, उसने एक हजार वर्षतक रोते हुए शिवकी आराधना की। इस कारणसे उसका नाम रावण पड़ा। यह मूर्ति एलोराके दशावतार मन्दिरमें प्राप्त होती है। मैसूर राज्यके वैलूरके कचनेश्वर स्वामीके मन्दिरमें तथा एलीफेण्टाके सामनेकी मुख्य गुफामें भी रावणानुग्रह मूर्ति है।

चण्डेश-अनुग्रह मूर्तिका सम्बन्ध दक्षिण भारतके चोलदेशके एक गाँवके निवासी यज्ञदत्तके पुत्र विचारशर्मा चण्डेशपर अनुग्रहसे है। पिताद्वारा बालूके शिवलिंगपर ठोकर मारनेपर शिवका अपमान न सहकर उसने पिताका पैर कुल्हाड़ीसे काट दिया। शिवने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिया एवं उसे अपने गणोंमें प्रमुख स्थान दिया। शिवकी प्रथम चण्डेश-अनुग्रह मूर्ति चोलपुरम् मन्दिरमें है। इस मूर्तिका दूसरा मौलिक नमूना काँजीवरम्के कैलासनाथ मन्दिरमें है, भगवती उमाने इसपर वात्सल्य प्रकट किया है।

विशिष्ट मूर्तियोंको दो भागोंमें बाँट सकते हैं—(१) पौराणिक, (२) दार्शनिक मूर्तियाँ।

पौराणिक मूर्तियोंके अन्तर्गत गंगाधरमूर्ति एवं अर्धनारीश्वरकी मूर्ति आती है। एलोरा, एलीफेण्टा तथा बादामीके गुफा-मन्दिरोंमें यह मूर्ति मिलती है। हरिहरमूर्ति शिव एवं विष्णुकी एकात्मक सत्ताका प्रतीक है। एक भव्य हरिहर प्रतिमा बादामीमें मिलती है। एलोराकी लंकेश्वर-गुफामें एक हरिहरकी मूर्ति है, वृषभवाहन मूर्ति तो प्रसिद्ध ही है। कल्याणसुन्दर मूर्तिमें शिव-पार्वतीके विवाहसे सम्बद्ध अनेक दृश्योंको दिखलाया गया है। इस मूर्तिमें शिव-पार्वतीका हाथ पकड़े हुए दिखाये गये हैं। एलीफेण्टा एवं एलोराके देवालयोंमें इस मूर्तिका दर्शन सुन्दरतासे हुआ है। इसके अलावा अनेक लिंगोद्भव मूर्तियाँ मिलती हैं।

लिंगोद्भव मूर्तिमें ब्रह्मा एवं विष्णुके सृष्टिनिर्माणकर्ता होनेके विधायकत्वको बताया गया है। उसीमें एक स्तम्भके माध्यमसे शिवकी प्रतिष्ठा बतायी गयी है। ब्रह्मा हंस एवं विष्णु कच्छपके रूपमें उस शक्तिका पता लगानेमें असफल रहे। यही मूर्ति भारतके शिल्पमें लिंगोद्भवमूर्ति कहलाती है। इसके अलावा चन्द्रशेखर मूर्ति, पशुपति मूर्ति, सुखासन मूर्ति आदि बनायी गयी है। सुखासन मूर्तिमें शिव उमासहित आसनमें बैठे हैं। इसके बाद स्कन्द मूर्तिका स्थान है।

इसका निदर्शन एलोरा-एलीफेण्टा स्थानोंमें प्राप्त होता है।

दार्शनिक मूर्तियोंके अन्तर्गत इसमें पंचमहेश मूर्ति एवं अष्टमूर्तियाँ विशिष्ट मानी गयी हैं। स्थापत्य एवं मूर्तिकलाके दिग्दर्शनमें एलीफेण्टामें इसका दृश्य अद्भुत है। अष्ट प्रतिमा तंजौरमें भी है। एलीफेण्टा गुफामें त्रिमुख महेश मूर्ति है, इसे त्रिदेव भी कहते हैं।

अशान्त एवं उग्र मूर्तियोंके अन्तर्गत कामान्तक मूर्ति एवं संहारमूर्तियाँ आती हैं। इनमें कामका तीसरे नेत्रके दृष्टिपातसे भस्म होना प्रदर्शित किया गया है।

संहारमूर्तियोंमें शिवको भक्तों एवं देवताओंके शत्रुओंका संहार करते हुए दिखाया गया है। वे उग्र एवं विनाशकारी रूपमें दिखाये गये हैं। व्याघ्रचर्म तथा सर्पोंसे लिपटे दिखाये गये हैं। इनमें शिवके साथ पार्वतीको नहीं दिखाया गया है। एक मूर्तिमें गजासुरका संहार करते हुए शिवको दिखाया गया है। कालारि मूर्ति एवं त्रिपुरान्तक मूर्ति भी इसी कोटिमें आती है।

भैरव मूर्तियोंके अन्तर्गत सामान्य भैरव, बटुक भैरव, स्वर्णाकर्षण भैरव एवं चतुष्पटिक भैरवकी मूर्तियाँ हैं। वीरभद्र मूर्ति, जालन्धरवध मूर्ति एवं अघोर मूर्ति भी प्रसिद्ध है। अघोर मूर्तिका सम्बन्ध अघोर एवं वामाचारसे है।

लिंगमूर्तियोंके अन्तर्गत चल एवं अचल मूर्तियाँ आती हैं—

मृण्मय मूर्तियाँ, लौहज मूर्तियाँ, रजत मूर्तियाँ, स्वर्ण मूर्तियाँ, रत्नज मूर्तियाँ, शैलज मूर्तियाँ एवं क्षणिक मूर्तियोंको रखा गया है।

लिंगोद्भव मूर्तियोंका उदाहरण भीटागाँवमें प्राप्त होता है। खजुराहोके मातंगेश्वर मन्दिरमें भी इसका अच्छा उदाहरण देखा जा सकता है।

सम्पूर्ण भारतवर्ष शिवमय है, शिव आदि-अनादि देवता हैं। स्थान-स्थानपर वे शिवलिंगके रूपमें प्रकट होकर भक्तोंका कल्याण करते हैं। एक स्थलमें उनकी नाममयी स्तुति इस प्रकार की गयी है—

शम्भो महेश करुणामय शूलपाणे गौरीपते पशुपते पशुपाशनाशिन्।
काशीपते करुणया जगदेतदेक स्त्वं हंसि पासि विदधासि महेश्वरोऽसि॥
त्वत्तो जगद्भवति देव भव स्मरारे त्वय्येव तिष्ठति जगन्मृड विश्वनाथ।
त्वय्येव गच्छति लयं जगदेतदीश लिंगात्मकं हर चराचरविश्वरूपिन्॥

हे शम्भो! हे महेश! हे करुणामय! हे शूलपाणे! हे गौरीपते! हे पशुपते! हे पशुपाशनाशिन्! हे काशीपते! आप ही अपनी अपार करुणासे इस जगत्‌की सृष्टि करते हैं, इसका पालन करते हैं और इसका संहार करते हैं। आप देवोंके भी देव महादेव हैं। हे देव! हे भव! आपसे ही जगत्‌की उत्पत्ति होती है। हे स्मरारे! आपमें ही जगत्‌की प्रतिष्ठा (स्थिति) है और हे मृड! हे विश्वनाथ! यह जगत् अन्तमें आपमें ही लीन भी हो जाता है। हे ईश! हे हर! हे चराचरविश्वरूपिन्! आप लिंगात्मकको नमस्कार है।

आवरणचित्र-परिचय

चैत्र, आषाढ़, आश्विन और माघकी शुक्ल प्रतिपदासे नवमीतकके नौ दिन नवरात्र कहलाते हैं, परंतु प्रसिद्धिमें चैत्र और आश्विनके नवरात्र मुख्य माने जाते हैं। चैत्रमें नवरात्र-पर्यन्त आद्याशक्ति भगवती दुर्गा तथा भगवान् श्रीरामकी विशेष आराधना की जाती है, जिससे वातावरण परम सात्त्विक एवं शक्तिमय हो जाता है। भक्तजन यथासामर्थ्य व्रत-उपवास करनेके साथ कहीं भगवतीका दर्शन, पूजा, स्तुति, भजन करते हैं तो कहीं श्रीदुर्गासप्तशती, श्रीदेवीभागवत तथा श्रीरामचरितमानसप्रभृति प्रासादिक ग्रन्थोंका पाठ करके लाभ प्राप्त करते हैं। इस वर्ष चैत्र नवरात्र, जिसे वासन्ती नवरात्र भी कहते हैं दि० २१ से २८ मार्च तक है। भक्तजनोंको इस पावन अवसरका यथासम्भव लाभ प्राप्त करना चाहिये। आवरणचित्रमें महिषासुरका वध करती भगवती दुर्गाकी छविका चित्रण है, जिनकी कथा श्रीदुर्गासप्तशतीके तृतीय अध्यायमें वर्णित है। महिषासुरके वधके अनन्तर देवता भगवती दुर्गाकी स्तुति करते हैं, उस स्तुतिका एक श्लोक इस प्रकार है—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदाऽऽर्द्रचित्ता॥

माँ दुर्गे! आप स्मरण करनेपर सब प्राणियोंका भय हर लेती हैं और स्वस्थ पुरुषोंद्वारा चिन्तन करनेपर उन्हें परम कल्याणमयी बुद्धि प्रदान करती हैं। दुःख, दरिद्रता और भय हरनेवाली देवि! आपके सिवा दूसरी कौन है, जिसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा ही दयार्द्र रहता हो।

कहानी—

सेवा

(श्री 'चक्र')

'सेनापति! कभी तुम भी राजपूत थे, तुममें भी राजपूती रक्त है; तुम समझ सकते हो कि कोई राजपूत इस प्रकारका अपमान कैसे सह सकता है। उन्होंने जो भी किया, अपनी मर्यादाके लिये। उनकी रक्षा तुम्हारे हाथों है, तुम भूले नहीं होगे कि मैं सम्बन्धमें तुम्हारी बहन होती हूँ। अभी परसों मेरी शादी हुई है, आज ही मुझे विधवा मत बनाओ। तुम मेरे भाई हो, अतः इतना भी कहते बना। तुम्हारी बहन····'

सेनापति बहरामखाँने पत्रको कई बार पढ़ा। कुछ देरतक वे सोचते रहे।'ऐसा नहीं हो सकता। मुझे स्वामीकी आज्ञाका पालन तो करना ही होगा।' पत्रवाहकको कहला दिया 'विचार करूँगा'। स्वयं शिविरसे बाहर टहलने लगे।

सरदार रामसिंहको प्राणदण्डकी आज्ञा मिल चुकी थी। सेनापति चाहते तो अपने आग्रहसे उनकी रक्षा कर सकते थे, किंतु उन्होंने उपेक्षा की। शृंखलाओंसे जकड़े हुए उस राजपूत सिंहका वधिकोंने सिर उतार लिया। बागी सरदारका मस्तक देखकर बादशाह प्रसन्न हुआ।

पिछले दिनों विवाहके लिये बादशाहसे छुट्टी लेकर रामसिंह सेनासे पृथक् हुए थे। संयोगवश उन्हें लौटनेमें देर हुई। वे दरबारमें गये, बादशाहने एक दिनकी देरीपर कोई ध्यान नहीं दिया। पर घटनाक्रम यहीं समाप्त नहीं हुआ। अपने पदपर काम करनेके लिये जब वे उपसेनापतिके पास पहुँचे तो उसने इन्हें गालियाँ दीं। राजपूत वीर अपमान नहीं सह सकता। उन्होंने तलवार निकाली और उपसेनापतिको काटकर दो कर दिया।

अपराध तो इतना ही था। फिर तो आत्मरक्षाके लिये जो दो, चार, दस सैनिक झपटे, उनका भी वध करना पड़ा। रामसिंह वहाँसे सीधे अपने निवासस्थानपर चले आये। यदि वे उस समय भी सेनापतिके समीप चले जाते तो सम्भवतः इतना भयंकर परिणाम न होता।

बादशाहको समाचार मिला। उसने सोचा 'रामसिंह विद्रोही हो गया है।' सेनापतिको उसका मस्तक लानेकी आज्ञा हुई। बहरामखाँने सेना लेकर रामसिंहके भवनपर चढ़ाई की और उन्हें बन्दी कर लिया। बेचारी नववधू और कर भी क्या सकती थी, उसने सेनापतिको पत्र लिखा।

(२)

राजपूत रमणी पतिके साथ सती न हो सकी। कुलगुरुने पता नहीं क्यों उसे ऐसा करनेसे रोक दिया। वह राजभवनसे रात्रिमें एकाकी ही निकली और कहीं चली गयी। फिर किसीको रामसिंहकी विधवा पत्नीका पता नहीं चला। उसे किसीने कभी नहीं देखा।

स्वयं बहरामखाँको बादशाहके विरुद्ध संयोगवश विद्रोह करना पड़ा। बहरामखाँने जब विद्रोह किया तो वह दिल्लीसे बाहर था। बादशाहकी विशाल सेना युवराजके सेनापतित्वमें विद्रोही सेनापतिका दमन करने भेजी गयी। भयंकर संग्राम आरम्भ हो गया।

नित्य सन्ध्याको संग्रामभूमिमें कुछ सफेद नकाब-पोश आते और घायल सैनिकोंको उठा ले जाते। जब वे सैनिक अच्छे होकर लौटते थे तो बतलाते कि 'पास ही किसी वनमें कुछ सुन्दर शिविर हैं। वहाँ रोगियोंके उपचारकी सब सामग्री प्रस्तुत रहती है। कुछ नकाब-पोश रोगियोंकी बड़े प्रेमसे शुश्रूषा करते हैं। कोई भी वहाँका सेवक कभी मुख नहीं खोलता। वहाँकी स्वामिनी युद्धकी देवी कही जाती हैं। वे एक बार आती हैं और सबको देख जाती हैं। बहुत पूछनेपर भी उनके विषयमें कोई कुछ न जान सका। उन्हें खुले मुख किसीने कभी नहीं देखा है।'

पता लगानेपर भी उस वनका पता नहीं लगा। आँखोंपर पट्टी बाँधकर वहाँके सेवक घायलोंको ले जाते और अच्छे हुए सैनिकोंको छोड़ जाते थे। वहाँसे सैनिकोंको एक ही शिक्षा मिलती थी—'शत्रुका भी सम्मान करो और उसकी परिस्थितिको समझकर तब उसपर क्रोध करो।' 'युद्धकी देवी' यह नाम बड़ी श्रद्धाकी वस्तु हो गया था। कोई भी देवीके आदमियोंको रोकने या उनके कार्यमें बाधा देनेका साहस नहीं कर सकता था। लोग सचमुच उसे देवी समझते थे।

सहसा एक दिन भयंकर युद्ध होने लगा। युवराज स्वयं युद्ध संचालन कर रहे थे। बहरामखाँ घायल होकर हाथीसे नीचे गिरा। निकट ही था कि शाही सैनिक उसे मार डालते, पर इसी समय एक श्वेत घोड़ा दौड़ता हुआ आया। श्वेत नकाबपोशको देखकर सैनिक ठिठकसे गये। नकाबपोशने कहा 'बस, लड़ाई बन्द करो। मैं हूँ युद्धकी देवी।' युवराज नहीं चाहते थे कि सेनापति इस प्रकार हाथसे निकल जाय, लेकिन देवीको रोकनेका उनमें साहस भी नहीं था। कोई सैनिक भी साथ न देता, विवश थे।

(३)

बहरामखाँ बार-बार सोचता 'मैं कहाँ हूँ? ये लोग कौन हैं? युद्धमेंसे मेरे प्राण बचानेवाली वह देवी कौन है? वह कहाँ रहती है?' सेनापति देखते कि देवी दिनमें कई बार आकर वहाँके सेवकोंसे कुछ पूछ जाती है। जब भी सेनापतिने कुछ पूछा, उन्हें प्रत्येकसे उत्तर मिला 'हम सेवक हैं, सेवा करना ही हमारा कार्य है। अच्छा हो यदि आप भी शत्रुकी परिस्थिति समझा करें और यथासम्भव पीड़ितोंकी सेवा किया करें।'

कई दिनोंमें जाकर जड़ी-बूटियोंके उपचारसे सेनापति अच्छे हो सके। उन्हें वहाँसे नेत्र बन्द करके एक पुरुष घोड़ेपर कहीं छोड़ आया। उन्होंने अपनेको उस स्थानसे दूर पाया।

युवराजने सेनापतिकी सेनाको बन्दी कर लिया था। वे सेनापतिकी प्रतीक्षामें थे। बहरामखाँ भी इस परिस्थितिको जानते थे। वे अवसरसे लाभ उठाकर बंगालकी ओर चले गये। कुछ दिन प्रतीक्षा करके युवराज भी दिल्ली लौट आये।

सेनापतिने मार्गमें सेना एकत्र करके बंगालके विद्रोही नवाबको पराजित किया। उससे कर लेकर दिल्ली भेज दिया। बादशाह इस बातसे बहुत प्रसन्न हुआ। उसने सेनापतिको क्षमा कर दिया। सेनापति दिल्ली आकर पूर्ववत् अपने पदपर कार्य करने लगे।

(४)

एक बहरामखाँ ही बेगमके मार्गमें बाधक थे। बेगम चाहती थी अपने पुत्र खुसरोको सिंहासनासीन बनाना और सेनापति पक्षपाती थे बड़े युवराजके। बादशाह युवराजको चाहते हुए भी राज्ञीके परवश थे। भावी शाहजहाँ इस प्रकार गद्दीसे वंचित किया जानेवाला था?

एक षड्यन्त्र नूरजहाँने रचा। सोते हुए सेनापतिका वध करनेके लिये एक सेनापतिका विश्वस्त सेवक प्रस्तुत हो गया। उसे विश्वास दिलाया गया था कि वह सेनापति बना दिया जायगा। लोभके वश मनुष्य क्या-क्या पाप नहीं करता?

सेनापति अपने शयनागारमें शयन कर रहे थे। रात्रिके प्रथम प्रहरमें द्वारपालने देखा कि एक नकाबपोश सम्मुख खड़ा है। 'कौन?' 'युद्धकी देवी, मार्ग छोड़ दो।' द्वारपालने तनिक हिचकिचाहटके साथ मार्ग छोड़ दिया।

सेनापति नींदसे जगाये जानेके कारण चौंक पड़े। उन्होंने पूछा—'आप कौन हैं?' 'युद्धकी देवी।' झटपट पलंगसे उतरकर सेनापति घुटने टेककर नीचे बैठ गये और बोले 'मेरे लिये कुछ आज्ञा है?' 'हाँ, तुम अपने वस्त्र यहीं छोड़कर ऊपरके कमरेमें जाकर सो जाओ। रात्रिमें इस कमरेकी ओर मत आना।' आज्ञाका पालन हुआ।

(५)

सेनापतिको देवीकी बातसे बड़ा कुतूहल हो रहा था। वे प्रातः सर्वप्रथम अपने शयनागारमें पहुँचे। दूरसे वहाँका दृश्य देखते ही स्तम्भित-से हो गये। पलंगपर मुख ढके, उनके उसी रात्रिको छोड़े वस्त्रोंमें कोई सो रहा है। रात्रिमें किसीने उसका खून कर दिया। रक्तसे वस्त्र एवं भूमि लथपथ है। निकट जाकर देखनेसे पता लगा, वह कोई स्त्री है।

सेनापतिने ध्यानसे देखा। एक बन्द लिफाफा मिला। खोलकर उसमेंसे पत्र निकालकर पढ़ने लगे। 'सेनापति! राज्ञीने तुम्हारे वधका षड्यन्त्र रचा था। मैं तुमसे बता सकती थी, पर मुझे उस वधकर्ताके प्राण भी बचाने थे। प्रतिशोध मत लेना या लेना ही हो तो मुझसे सीख लो। तुमने मेरे पतिको प्राणदान नहीं दिया था। मुझे विधवा बना दिया था। यह उसका प्रतिशोध है। सेवा ही सच्चा प्रतिशोध है। मैंने अपने भाईकी सेवा की है। यह मेरा कर्तव्य था। तुम्हारी बहन....'

पत्र हाथसे छूटकर गिर पड़ा। सेनापति उस महिलाके चरणोंपर मस्तक रखकर फूट-फूटकर रोने लगे। उन्हें पश्चात्ताप हो रहा था, आत्मग्लानि हो रही थी। परिस्थिति भी विकट थी। वे जैसे-के-तैसे उठे और एक पत्र लिखकर राज्ञीके पास भिजवा दिया।

दूतने जाकर पत्र पहुँचवाया। उसमें लिखा था—'षड्यन्त्र विफल रहा। पर अच्छा होता यदि वह सफल हो गया होता। इस नीचकी रक्षाके लिये एक स्वर्गकी देवी बलिदान हो गयी। मैं अब बाधा नहीं दूँगा; मुझे आज्ञा मिले, मैं हजको आज ही जाना चाहता हूँ।'

महिलाका कोमल हृदय दहल उठा। राज्ञी चुपचाप गुप्तद्वारसे रक्षकोंके साथ सेनापतिके यहाँ पधारीं। उन्होंने उस देवीके शवको देखा, वह पत्र देखा और देखा पागल हुए बहरामको। रोती हुई बेगमने बहरामसे क्षमा माँगी। उस देवीके शवका ब्राह्मणोंसे संस्कार कराकर अन्त्येष्टि करायी गयी। बहरामखाँका मन फिर सेनाके कार्यमें नहीं लगा। वह राज्ञीको हृदयसे क्षमा भी न कर सका। फिर विद्रोही होकर भागा और मक्केकी यात्रा करने चला गया।

(६)

दिल्लीके किलेके पास नूरजहाँ बेगमकी बनवायी हुई वह समाधि अब भी है। परिस्थितिवश वह एक कोनेमें पड़ गयी है। पर अब भी कुछ जाननेवाली वृद्धाएँ उसे सतीका चबूतरा कहती हैं। वहाँ हिन्दू, मुसलमानका कोई भेद नहीं है। सब उसे प्रणाम करते हैं। स्त्रियाँ कभी फूल-बताशे भी चढ़ा आती हैं। कोई कभी दीपक भी रख आती हैं।

कहते हैं कि वहाँपर छोटे बच्चोंको ले जाकर प्रणाम करानेसे उनके रोग नष्ट हो जाते हैं। कुछ लोग उसे पीरकी कब्र भी कहते हैं। सम्भवतः उसे मुसलमानोंके द्वारा सम्मानित देखकर लोगोंकी ऐसी भावना हो गयी होगी।

साधनोपयोगी पत्र

भगवान् नित्य साथ रहते हैं

सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपके पत्र प्राप्त हो गये। बड़ा सुन्दर भाव है। भगवान्‌की आपपर बड़ी कृपा है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

हमको भगवान् इन आँखोंसे चाहे न दिखायी दें, पर यह निश्चय समझ लेना चाहिये कि हमारे पास वे सदा-सर्वदा रहते हैं, कभी भी हमको छोड़कर अलग नहीं होते। पर हमारा पूरा निश्चय न होनेसे हम उन्हें भूले हुए हैं, इसीसे अशान्ति अनुभव करते हैं। हीरोंका हार अपने गलेमें ही है। वह कपड़ोंमें ढका है। इस बातको भूल जानेसे मनुष्य उसे बाहर ढूँढ़ता है और न मिलनेपर दुखी होता है। जब याद आ गया, कपड़ा हटाकर देख लिया कि हार मिल गया। इसी प्रकार भगवान् सदा-सर्वदा हमारे साथ हैं। हृदयमें विराजमान हैं। (केवल निर्गुण-निराकार रूपसे ही नहीं हमारे जाने-माने हुए दिव्य सगुण-साकार रूपमें भी।) विश्वास कीजिये—'वे सदा साथ रहते हैं।' इसके बाद निश्चय होगा कि 'रहते ही हैं' अतएव उनकी इच्छा होगी तब दीखने भी लगेंगे। यह उनकी इच्छापर छोड़ दीजिये। वे सदा साथ रहते हैं, यही क्या उनकी कम कृपा है। उनकी यदि स्वप्नमें भी झाँकी होती है तो यह हमारा बड़ा सौभाग्य है। यह उनकी महती कृपा है।

कदाचित् ऐसी बात न जँचे, यद्यपि है तो यह परम सत्य ही, तो उनके न मिलनेसे उनके वियोगमें—विरहमें जो उनका पल-पलमें स्मरण होता है, यह क्या कम सौभाग्य है? इसमें क्या उनकी कम कृपा है? वे नहीं चाहते तो न मिलें, न दर्शन दें, बड़े-से-बड़ा दुःख दें, पर वह दुःख यदि नित्य उनका मधुर-मधुर स्मरण कराता हो तो क्या हमारी यह चाह नहीं होनी चाहिये कि उनके इस मधुर-मधुर स्मरण सुखका महान् आनन्द, महान् सौभाग्य हमें प्रतिक्षण मिलता रहे; फिर वह चाहे वियोगजनित दुःखसे ही मिलता हो। वह दुःख वस्तुतः परमानन्दस्वरूप है, जो नित्य-निरन्तर प्राण-प्रियतम प्रभुकी स्मृति कराता है।

मनमें निश्चय कर लेना चाहिये कि 'भगवान् मेरे हैं और मैं भगवान्‌का हूँ।' जबतक शरीरमें 'अहंता' और शरीर-सम्बन्धी प्राणि-पदार्थोंमें 'ममता' रहती है, तबतक साधना आगे बढ़ती नहीं। दिन-रात प्राणि-पदार्थोंमें राग-द्वेष बना रहता है। इसलिये या तो शरीर एवं संसारको असत् समझकर अहंता और ममता मिटा दी जाय अथवा बहुत ही सरल, सरस दूसरी चीज यह है कि 'अहंता' (मैं)-को भगवान्‌का दास बना दिया जाय—अर्थात् मैं न तो शरीर हूँ, न और कुछ हूँ न और किसीका हूँ। मैं एकमात्र उन्हींका दास हूँ और 'सारी ममता-सारे मेरेपनको भगवान्‌में लगा दिया जाय।' अर्थात् कोई भी प्राणि-पदार्थ मेरा नहीं। एकमात्र भगवान् ही मेरे हैं। भगवान्‌के चरण-कमल ही मेरे हैं। 'मैं उनका और वे ही मेरे'—तब फिर अपने-आप ही सारी अशान्ति, सारे दुःख-दोष दूर हो जायँगे। उनका अनन्त सुखमय स्मरण आपका जीवन बन जायगा। इसमें भी पहले विश्वास करना होगा कि 'मैं उनका ही हूँ और वे ही मेरे हैं।' इसके बाद निश्चय होगा कि 'अवश्य ही हैं'; फिर अनुभूति होगी और यह अनुभव हो जायगा कि 'मैं उनका ही हूँ और वे ही मेरे हैं।' एक भक्तने बड़ा सुन्दर अपना परिचय दिया है—

नाहं विप्रो न च नरपतिर्नैव वैश्यो न शूद्रो
नाहं वर्णी न च गृहपतिर्नो वनस्थो यतिर्वा।
किंतु प्रोद्यन्निखिलपरमानन्दपूर्णामृताब्धे-
र्गोपीभर्तुः पदकमलयोर्दासिदासानुदासः॥

'मैं न तो ब्राह्मण हूँ, न क्षत्रिय हूँ, न वैश्य हूँ, न शूद्र हूँ। न ब्रह्मचारी हूँ, न गृहस्थ हूँ, न वानप्रस्थी हूँ और न संन्यासी हूँ; किंतु अखिल परमानन्द-परिपूर्ण अमृतसागर-स्वरूप श्रीगोपीपति श्रीकृष्णके चरण-कमलके दासके दासका अनुदास हूँ।' इस प्रकार जब भगवान् 'मैं और मेरे' बन जाते हैं, तब न तो कोई जगत्‌से सम्बन्ध रह जाता है और न जगत्‌से कोई आशा ही रह जाती है। फिर यदि जगत्‌का सम्बन्ध रहता है तो वह प्रभुके मधुर सम्बन्धको लेकर ही रहता है; किसी ममता-आसक्ति, आशा-आकांक्षाको लेकर नहीं। हर समय, हर जगह, हर अवस्थामें प्राणधन प्रभुकी स्मृति और उनकी उन्मादकारिणी पावन झाँकी होती रहती है। नित्य-निरन्तर प्रतिक्षण उनकी सेवाका सुअवसर-सौभाग्य मिलता रहता है। कोई काम ऐसा होता ही नहीं, जिसमें उनकी सेवा न बनती हो। हम सोते हैं और उनकी सेवा होती है; हम खाते हैं और उनका भोग लगता है; क्योंकि प्रभुकी सेवाको छोड़कर फिर अलग अपना कोई काम रह ही नहीं जाता। इसीसे भगवान् कहते हैं कि 'वह मेरा ही काम करता है'—(श्रीमद्भगवद्गीता ११।५५)। इसलिये सेवाप्राण, सेवापरायण, सेवाजीवन भगवान्‌के सेवक उनकी सेवाको छोड़कर दिये जानेपर भी मुक्ति स्वीकार नहीं करते—

'दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः।'

(श्रीमद्भा० ३।२९।१३)

कौन विषयी है, कौन साधक—यह सब कुछ मत देखिये। दूसरोंमें दोष देखनेसे अपनेमें गुणका अभिमान जाग्रत् होता है, जो भगवान्‌की ओरसे वृत्तिको हटाकर सब लोगोंमें दोष-दर्शनमें ही लगा देता है और इससे चित्तमें एक नयी ज्वाला और नयी अशान्ति उत्पन्न हो जाती है। 'सब भगवान्‌के हैं'—यही समझिये। भगवान्‌के अनुग्रहका आश्रय रखिये। उनकी कृपासे सारे विघ्न टल जायँगे, अवश्य ही टल जायँगे—'**सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि।**' (गीता १८।५८) भगवान्‌का प्रसाद आपको बड़े-बड़े विघ्नोंके सरदारोंका सिर कुचलकर आगे बढ़ा ले जायगा। ब्रह्माजीने कहा है—

'त्वयाभिगुप्ता विचरन्ति निर्भया
विनायकानीकपमूर्धसु प्रभो।'

(श्रीमद्भा० १०।२।३३)

'प्रभो! आपके द्वारा सुरक्षित होकर वे बड़े-बड़े विघ्न डालनेवाली सेनाके सरदारोंके सिरपर पैर रखकर निर्भय विचरते हैं।'

यह सत्य है कि वातावरणका अच्छा-बुरा असर मनपर पड़ता है और यह भी सत्य है कि मनके विकारोंको, दुर्बलताओंको तथा दोषोंको दूर करने एवं भगवान्‌के प्रति दृढ़ विश्वास-आस्था उत्पन्न करनेके

लिये सत्संगकी आवश्यकता है। अतएव सत्संगकी इच्छा तथा सत्संगकी प्राप्तिके लिये प्रयत्न भी करना चाहिये, परंतु इतनेपर भी यदि बाहरी सत्संग न मिले, तो सत्संगके लिये व्याकुल रहते हुए भी, इसे भी भगवान्‌का मंगल-विधान मानना चाहिये। वे प्रभु तो कभी अलग होते ही नहीं। वे स्वयं ही ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देंगे, जिससे सत्संगसे बढ़कर लाभ उस विपरीत वातावरणमें ही हो जायगा। वे चाहेंगे तो सत्संगका सुअवसर बना देंगे। किसी संतको भेज देंगे या स्वयं ही प्रकट होकर अथवा अप्रकट रूपसे समस्त विकारों, दुर्बलताओं तथा दोषोंको हराकर उसे भलीभाँति अपना लेंगे। जरा भी निराश न होकर सदा-सर्वदा भगवान्‌की कृपापर विश्वास रखना चाहिये और सर्वत्र, सदा उनकी कृपाको देखते रहना चाहिये।

भगवान्‌की कृपाका अटल अडिग विश्वास बना रहे, ऐसी आपकी चाह बहुत उत्तम है। भगवान् हमारी प्रत्येक चाहको जानते हैं। विश्वास रखिये, वे सच्ची चाहको पूरा भी करते हैं।

भगवान्‌का तो स्वभाव ही दीन-हितकारी है। वे सदा ही दीन, हीन, मलिन, पामर जनोंपर सहज प्रीति करते आये हैं—

'विरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति।'

आप क्यों मानते हैं कि आपपर भगवान्‌की अनन्त और असीम कृपा नहीं है। आपको निश्चय मान लेना चाहिये कि आपपर भगवान्‌की अत्यन्त और असीम कृपा है। वह कृपा आपको दिखती नहीं, इससे क्या हुआ? भूख-प्यास आँखसे दिखती है क्या? मनके हर्ष-विषाद आँखसे दिखते हैं क्या? पर जरा गहराईसे विचार कीजिये, यदि आपके मनमें अडिग और अटल कृपापर विश्वासकी चाह होती है, आप निरन्तर उनका मधुर स्मरण करना चाहते हैं, आप सदा-सर्वदा प्रभुको अपने हृदयमें बसाना और स्वयं उनके हृदयमें बसना चाहते हैं, आपको उनकी चर्चासे रहित बातें अच्छी नहीं लगतीं, आपको उनकी मधुर लीलाकी चर्चाके बिना चैन नहीं पड़ता, आप सदा-सर्वदा उनकी ही सन्निधिमें रहना चाहते हैं, यह क्या उनकी प्रत्यक्ष कृपा नहीं है? इस युगमें कितने आदमी ऐसे हैं, जिनके ऐसे भाव हैं? अतएव आप विश्वास कीजिये; फिर अनुभूति भी हो जायगी।

पर यदि सांसारिक विघ्नोंका अवसान न हो, विघ्न-पर-विघ्न आते रहें तो उसमें भी प्रभुकी मंगलमयी कृपाका ही दर्शन करते रहिये। यह समझिये कि 'मेरी सारी संसारासक्तिका नाश करनेके लिये ही प्रभुकी महती कृपा विघ्नमयी भीषण मूर्ति धरकर पधारी है। प्रभु अब मेरी सारी आशा-आसक्ति और कामना-वासनाका शीघ्र ही नाश करना चाहते हैं। अतः अब तो और भी जोरसे लगकर उनका स्मरण करूँ।' मतलब यह है कि उनके मंगल-विधानमें सर्वथा विश्वास कीजिये और उनकी भेजी हुई प्रत्येक परिस्थितिसे लाभ उठाइये।

यह परम सत्य है कि वे प्रत्येक परिस्थिति हमारे लाभके लिये ही भेजा करते हैं। हाँ, परिस्थिति वैसे ही अलग-अलग होती हैं, जैसे निपुण वैद्यका विभिन्न प्रकारसे रोगियोंके लिये विभिन्न प्रकारकी चिकित्साओंका चुनाव और प्रयोग। हो सकता है कोई औषधि मीठी हो, भरपेट भोजन मिलता हो और आराम कराया जाता हो एवं कोई औषधि अत्यन्त कडुई हो; कहीं अंगच्छेदन भी हो और कहीं लम्बे उपवासकी ही व्यवस्था हो; पर दोनों ही स्थितियोंमें विधान होता है रोगनाशके लिये ही। इसी प्रकार भगवान्‌के प्रत्येक मंगलमय विधानको मंगलमय समझकर सादर ग्रहण कीजिये और हर परिस्थितिमें कृतज्ञतापूर्वक उनका स्मरण करते रहिये। समर्पण तो वे अपनी चीजका आप ही करा लेंगे, हमारी ओरसे समर्पणकी तैयारी रहनी चाहिये।

यह कभी मत समझिये कि उनके घर, उनके हृदयमें हमारे लिये जगह नहीं है। हमको तो वे अपने हृदयमें ही रखते हैं और वे सदा हमारे हृदयमें ही रहते हैं; पर सहसा प्रत्यक्ष नहीं होते। इसमें भी उनका मंगलमय रहस्य ही है। अतएव सदा सब प्रकारसे उल्लसित और प्रफुल्लित हृदयसे उनका मंगल-स्मरण करते रहिये। शेष प्रभुकृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा सायं ६।१६ बजेतक	रवि	चित्रा रात्रिमें १२।५० बजेतक	५ अप्रैल	**तुलाराशि** दिनमें ११।४८ बजेसे।
द्वितीया रात्रिमें ७।२४ बजेतक	सोम	स्वाती ״ २।२७ बजेतक	६ ״	× × ×
तृतीया ״ ८।७ बजेतक	मंगल	विशाखा ״ ३।३७ बजेतक	७ ״	**भद्रा** दिनमें ७।४६ बजेसे रात्रिमें ८।७ बजेतक, **वृश्चिकराशि** रात्रिमें ९।१९ बजेसे, **संकष्टी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ८।५० बजे।
चतुर्थी ״ ८।१७ बजेतक	बुध	अनुराधा रात्रिशेष ४।१५ बजेतक	८ ״	**मूल** रात्रिशेष ४।१५ बजेसे।
पंचमी ״ ७।५५ बजेतक	गुरु	ज्येष्ठा ״ ४।२५ बजेतक	९ ״	**धनुराशि** रात्रिशेष ४।२५ बजेसे।
षष्ठी ״ ७।५ बजेतक	शुक्र	मूल रात्रिमें ४।६ बजेतक	१० ״	**भद्रा** रात्रिमें ७।५ बजेसे, **मूल** रात्रिमें ४।६ बजेतक।
सप्तमी सायं ५।४८ बजेतक	शनि	पू० षा० ״ ३।२२ बजेतक	११ ״	**भद्रा** प्रात: ६।२६ बजेतक।
अष्टमी दिनमें ४।१० बजेतक	रवि	उ० षा० ״ २।१९ बजेतक	१२ ״	**मकरराशि** दिनमें ९।६ बजेसे, **श्रीशीतलाष्टमीव्रत।**
नवमी ״ २।१४ बजेतक	सोम	श्रवण ״ १।० बजेतक	१३ ״	**भद्रा** रात्रिमें १।९ बजेसे।
दशमी ״ १२।२ बजेतक	मंगल	धनिष्ठा ״ ११।२९ बजेतक	१४ ״	**भद्रा** दिनमें १२।२ बजेतक, **कुम्भराशि** दिनमें १२।१४ बजेसे, **मेष-संक्रान्ति** दिनमें ३।२५ बजे, **खरमास समाप्त, पंचकारम्भ** दिनमें १२।१४ बजेसे।
एकादशी ״ ९।४१ बजेतक	बुध	शतभिषा ״ ९।५० बजेतक	१५ ״	**वरूथिनी एकादशीव्रत** (सबका), **श्रीवल्लभाचार्य-जयन्ती।**
द्वादशी प्रात: ७।१५ बजेतक त्रयोदशी रात्रिशेष ४।५० बजेतक	गुरु	पू०भा० ״ ८।१० बजेतक	१६ ״	**भद्रा** रात्रिशेष ४।५० बजेसे, **मीनराशि** दिनमें २।३५ बजेसे, **प्रदोषव्रत।**
चतुर्दशी रात्रिमें २।२९ बजेतक	शुक्र	उ० भा० सायं ६।३२ बजेतक	१७ ״	**भद्रा** दिनमें ३।३९ बजेतक, **मूल** सायं ६।३२ बजेसे।
अमावस्या ״ १२।१७ बजेतक	शनि	रेवती ״ ५।३ बजेतक	१८ ״	**मेषराशि** सायं ५।३ बजेसे, **अमावस्या, पंचक समाप्त** सायं ५।३ बजे।

सं० २०७२, शक १९३७, सन् २०१५, सूर्य उत्तरायण, वसन्त-ऋतु, वैशाख शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें १०।२० बजेतक	रवि	अश्विनी दिनमें ३।४६ बजेतक	१९ अप्रैल	**मूल** दिनमें ३।४६ बजेतक।
द्वितीया ״ ८।४२ बजेतक	सोम	भरणी ״ २।४८ बजेतक	२० ״	**वृषराशि** रात्रिमें ८।३८ बजेसे, **सायन वृषका सूर्य** सायं ५।२६ बजे।
तृतीया ״ ७।२६ बजेतक	मंगल	कृत्तिका ״ २।९ बजेतक	२१ ״	**श्रीपरशुराम-जयन्ती, अक्षयतृतीया।**
चतुर्थी सायं ६।३६ बजेतक	बुध	रोहिणी ״ १।५५ बजेतक	२२ ״	**भद्रा** दिनमें ७।१ बजेसे सायं ६।३६ बजेतक, **मिथुनराशि** रात्रिमें २।२ बजेसे, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ״ ६।१५ बजेतक	गुरु	मृगशिरा ״ २।१० बजेतक	२३ ״	**आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य-जयन्ती।**
षष्ठी ״ ६।२४ बजेतक	शुक्र	आर्द्रा ״ २।५५ बजेतक	२४ ״	**श्रीरामानुजाचार्य-जयन्ती।**
सप्तमी रात्रिमें ७।८ बजेतक	शनि	पुनर्वसु ״ ४।११ बजेतक	२५ ״	**भद्रा** रात्रिमें ७।८ बजेसे, **कर्कराशि** दिनमें ९।५२ बजेसे, **श्रीगंगासप्तमी।**
अष्टमी ״ ८।१६ बजेतक	रवि	पुष्य सायं ५।५४ बजेतक	२६ ״	**भद्रा** दिनमें ७।४२ बजेतक, **मूल** सायं ५।५४ बजेसे।
नवमी ״ ९।५२ बजेतक	सोम	आश्लेषा रात्रिमें ८।२ बजेतक	२७ ״	**सिंहराशि** रात्रिमें ८।२ बजेतक, **श्रीसीतानवमी।**
दशमी ״ ११।४४ बजेतक	मंगल	मघा ״ १०।२८ बजेतक	२८ ״	**भरणीका सूर्य** दिनमें ७।४१ बजे, **मूल** रात्रिमें १०।२८ बजेतक।
एकादशी ״ १।४६ बजेतक	बुध	पू० फा० ״ १।४ बजेतक	२९ ״	**भद्रा** दिनमें १२।४५ बजेसे रात्रिमें १।४६ बजेतक, **मोहिनी एकादशीव्रत** (सबका)।
द्वादशी ״ ३।४९ बजेतक	गुरु	उ० फा० ״ ३।४१ बजेतक	३० ״	**कन्याराशि** दिनमें ७।४३ बजेसे।
त्रयोदशी अहोरात्र	शुक्र	हस्त अहोरात्र	१ मई	**प्रदोषव्रत।**
त्रयोदशी प्रात: ५।४१ बजेतक	शनि	हस्त प्रात: ६।७ बजेतक	२ ״	**तुलाराशि** रात्रिमें ७।११ बजेसे, **श्रीनृसिंहचतुर्दशीव्रत।**
चतुर्दशी दिनमें ७।१४ बजेतक	रवि	चित्रा दिनमें ८।१५ बजेतक	३ ״	**भद्रा** दिनमें ७।१४ बजेसे रात्रिमें ७।४८ बजेतक, **व्रतपूर्णिमा।**
पूर्णिमा ״ ८।२० बजेतक	सोम	स्वाती ״ ९।५७ बजेतक	४ ״	**वृश्चिकराशि** रात्रिमें ४।५५ बजेसे, **पूर्णिमा, बुद्धपूर्णिमा।**

कृपानुभूति

शिवकी अद्भुत कृपा

इस समय हमारे यहाँ जो निर्माणकार्य चल रहा है, उसमें कार्यरत एक मिस्त्रीके मुखसे मैंने यह प्रसंग जैसा सुना, वैसा लिख रहा हूँ—

बात सन् १९९५-९६ ई० के आसपासकी है। उस समय मेरी अवस्था लगभग २५ वर्ष होगी। नवविवाहित था, एक पुत्र भी हो गया था, आधुनिक इमारतोंमें जो RCC का काम होता है, वही करता था। काम कभी मिलता था, कभी नहीं मिलता था। दैनिक मजदूरी भी उन दिनों अधिक नहीं थी। रहनेको घर नहीं था, किसी भले आदमीने अपने घरके बाहरी बरामदेमें रहनेकी अनुमति दे दी थी। वहीं १०×१० वर्ग फुटकी जगहमें पत्नी और बच्चेके साथ रहता था। बरसातमें उसकी छत इतनी टपकती थी कि एक ड्रम पानी इकट्ठा हो जाता।

एक समय ऐसा आया कि लम्बे समयतक काम ही न मिला। भोजनतकके लाले पड़ गये। प्रतिदिन अपने गाँवसे पैदल शिरवलतक जाता कामकी तलाशमें और निराश होकर वापस लौटता। शिरवल कोई बड़ा शहर तो नहीं, परंतु गाँवकी अपेक्षा बड़ा और विकासशील था। मगर वहाँ भी काम न मिला। अभाव और भुखमरीने मुझे मानसिकरूपसे विक्षिप्त कर दिया। कामकी तलाशमें घूमनेकी भी शरीरमें शक्ति नहीं रह गयी थी। हर समय गुमसुम और रोता रहता था। गाँवके एक सज्जनको मुझसे गहरी सहानुभूति थी। वे सज्जन मुझे शिरवलनिवासी एक ब्राह्मणके पास ले गये, जो सात्त्विक-सदाचारी और भक्त थे। शायद उनकी कृपासे कुछ भला हो जाय, ऐसा उद्देश्य था ले जानेके पीछे।

ब्राह्मण महोदय भी मेरी कथा सुनकर व्यथित हो गये। उन्होंने मुझे आश्वस्त करते हुए कहा—चिन्ता मत करो। तुम्हारे सब दुःख दूर हो जायँगे। विशेष कुछ नहीं करना है। प्रतिदिन सुबह ठीक ७ बजे गाँवके शिवलिंगपर जल चढ़ाकर अगरबत्ती लगाया करो। मगर ध्यान रखना ठीक सात बजे, न छः पचपनपर और न सात पाँचपर।

अगरबत्ती तो मेरे पास थी नहीं। सो मैं केवल जल चढ़ा आता था। पन्द्रह दिन यह क्रम चलता रहा, मगर परिस्थिति ज्यों-की-त्यों रही। सोलहवें दिन मैंने आत्महत्या करनेका निश्चय कर लिया। जब पत्नी और बच्चेको दो वक्तकी रोटी भी नहीं दे सकता तो ऐसे जीनेसे क्या लाभ? सो सोलहवें दिन मैं बिना जल लिये शिवमन्दिर चला गया। माथा टेककर बोला—'आज मैं जल नहीं लाया, मगर आँसुओंसे तुम्हारा अभिषेक तो कर ही रहा हूँ। बस, अब मुझे मरनेकी अनुमति दे दो।' इतनी प्रार्थनाकर मस्तक उठाया तो देखता क्या हूँ—सामने नागदेवता फन उठाये प्रकट हैं। मैंने उनसे कहा—'जल नहीं चढ़ाया, इसलिये गुस्सा हो गये क्या? ठीक है। डँस लो। मैंने तो वैसे भी आज मरनेकी ठान ही ली है।'

मगर मेरी बात सुनकर नागदेवता लुप्त हो गये। इस घटनाक्रमसे मुझे कुछ आशा-सी बँधी। मैं मन्दिरसे सीधा शिरवलकी ओर निकल पड़ा, मगर मार्गमें ही मुझे एक व्यक्ति मिला और बोला—'यहीं नजदीक एक कम्पनीमें बहुत बड़ा काम चल रहा है। वहाँ काम करोगे?' मैंने हामी भर दी। मसाला बनानेकी एक सुप्रसिद्ध कम्पनीके अहातेमें वह व्यक्ति मुझे ले गया, जहाँ बृहद् निर्माणकार्य चल रहा था और वहाँके ठेकेदारसे मुझे मिलाया। ठेकेदारने मुझे कामपर रख लिया। मेरी ईमानदारी, लगन और कार्यकुशलता देखकर 'शिवा' नामक वह ठेकेदार इतना प्रसन्न हुआ कि एक ही सप्ताह पूरा होनेपर उसने मुझे ग्यारह हजार रुपये दे दिये और कहा—'अपने घर-वरकी मरम्मत कर लेना और सब ठीकठाक कर लेना।' उसके बाद शिवाने मुझे और भी बड़े कार्यभार तथा दायित्व सौंपे, जिन्हें मैंने बखूबी अंजाम दिया। लम्बे समयतक मैंने उसके साथ काम किया। तबसे लेकर आजतक मुझे कामकी कोई कमी नहीं रही। मैंने जीवनमें बहुत तरक्की की। मकान बनाया, दोनों लड़कोंको इंजीनियर बनाया।

प्रार्थना सुननेवाले भी शिव और जीवनको नया मोड़ देनेवाले भी शिव (शिवा)। उनकी महिमा अगाध है। एक लोटा जलके बदलेमें इतना सब कुछ आशुतोष भगवान् शिवशंकरके सिवाय दूसरा कौन दे सकता है?

[प्रेषक—श्रीजितेन्द्रजी लिमण]

पढ़ो, समझो और करो

(१)

पाप सिर चढ़कर बोलता है

घटना सन् १९८७ ई० से पहलेकी है। मैं पेशेसे शिक्षक था। (वर्तमानमें सेवानिवृत्त हूँ।) मेरा स्थानान्तरण मध्यप्रदेशकी तहसील हरसूदके ग्राम मालूदमें हुआ था। वर्तमानमें यह ग्राम डूबमें चला गया है। इस ग्राममें बंजारा समाज अधिक होनेसे इसको बंजारोंका ग्राम कहते थे। यह घटना उसी गाँवके एक सज्जन स्व० श्रीताराचन्द भाई राठौरसे मैंने सुनी थी। जो बोधप्रद होनेसे मैं लिख रहा हूँ। घटना इस प्रकार है—

ग्राममें बंजारा समाज अधिक होनेसे पशुओं (गाय, भैंस, बकरी)-को चरानेका काम बंजारे ही करते थे।

घटना मई-जून माहकी (गर्मीके दिनोंकी) है। चरवाह रोज समयसे पशुओंको चराने ले जाता था और शामको समयसे लौटा लाता था।

एक दिन ऐसा हुआ कि पशुओंके समूहमेंसे कुछ पशु इधर-उधर मुँह मारते हुए निकल गये। चरवाहने आवाज दी तो कुछ पशु लौट आये और कुछ मुँह मारते ही रहे। चरवाहने पत्थर उठाया और पशुओंकी ओर फेंका। पत्थर एक गायको ऐसी जगह लगा कि वह गिर गयी। चरवाहने सोचा कि थोड़ी देर बाद उठकर आ जायगी, पर ऐसा नहीं हुआ। समय हुआ और पशुओंको चरवाह घरकी ओर लाने लगा। उसका ध्यान उस गायकी ओर गया, जो गिर गयी थी। वह पासमें गया और देखा तो गाय मर गयी थी। चरवाहको समाजसे बहिष्कृत होनेका भय सताने लगा। उसने मरी गायको बेसरम (जंगली पौधे)-के पत्तोंसे ढक दिया और शेष मवेशी गाँवमें ले आया। सबके मवेशी अपने-अपने घर पहुँच गये।

चरवाह भोजन-पानी पानेके बाद अपने मित्रोंके साथ गप-शप करता चौपालमें बैठा। थोड़ी देरमें वह व्यक्ति उसके पास आया, जिसकी गाय घर नहीं आयी थी। उसने चरवाहसे शिकायत की तो चरवाहने कहा सभी ढोर तो आये थे। थोड़ा विचार-विमर्श करनेके बाद चरवाहा गायके मालिकके साथ गायको ढूँढ़नेका बहाना करके यह कहकर ले गया कि मैं आज यहीं मवेशी लाया था। कुछ देर बाद दोनों यह कहकर लौट आये कि कहीं होगी तो आ जायगी।

चरवाह वास्तविकतासे अनजान नहीं था। वह लगातार तीन दिनोंतक दूसरी ओर ही मवेशीको चराने ले जाता रहा। उसने सोचा अब तो गायको जंगली जानवर खा गये होंगे। वह मवेशी लेकर उस ओर गया, जिस ओर गाय गिरी थी। देखता क्या है कि गाय लँगड़ाते हुए मुँह मार रही है। उसके आश्चर्यका ठिकाना न रहा।

शामको समयसे सब ढोरोंके साथ उस गायको उस मालिकको सौंपकर वह प्रसन्न हुआ और कहा—सँभाल भाई! तेरी गाय मिल गयी। मालिक भी खुश हुआ।

चरवाह रोजकी तरह भोजन-पानी पानेके बाद अपनी मित्र-मण्डलीमें आकर बैठा गप-शप करने लगा। पर कहते हैं—

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान॥

अर्थात् चरवाह अपनी चतुराई और खुशीको दबा नहीं सका। उसने अपने मित्रोंसे सारी घटना विस्तारसे कह दी कि गायको मैंने पत्थर मारा था और गाय तो मर गयी थी। मैंने उसको पत्तोंसे ढक दिया था। आज देखा तो ले आया। इतना कह पाया था कि गायका मालिक दौड़ते हुए उसके पास आया और कहने लगा कि गाय तो मर गयी। सभीको सच्चाई तो पता चल चुकी थी। सभीने एक स्वरसे कहा—'तू हत्यारा है। तूने ही गायको मारा है।' गाँवके लोगोंने उसका हुक्का-पानी बन्द कर दिया। सच है पाप दाबे नहीं दबता है। पाप सिर चढ़कर बोलता है। प्रकृतिने उसीके मुँहसे सच उगलवा लिया।—**रामदास मेहता**

(२)

गरीबकी आह

इस जिन्दगीमें मैंने एक ऐसी घटना देखी है, जिसको देख या सुनकर उस व्यक्तिमें भी भगवान्‌पर विश्वास और आस्था जाग्रत् हो जायगी, जो भगवान्‌पर विश्वास नहीं करता होगा या नास्तिक होगा। बात ही कुछ ऐसी है।

करीब नौ-दस वर्ष पूर्व सन् २००५ ई० में मैं त्र्यम्बकेश्वर ज्योतिर्लिंग, नासिक शिवजीके दर्शनोंके लिये गया था और एक धर्मशालामें रुका था। वहाँ एक बुजुर्ग साहब भी ठहरे हुए थे, जो मुम्बईसे दर्शनके लिये आये थे। हम दोनों ही दर्शनके लिये साथ-साथ निकले। दर्शन करके जब बाहर आये तो भिखारियोंकी लाइन लगी थी। कहते हैं कि तीर्थ या किसी पवित्र स्थलमें जायँ तो गरीबों, दीन-दु:खियोंको कुछ-न-कुछ दान जरूर देना चाहिये।

जैसे ही मैं दान देनेके लिये आगे बढ़ा, मेरे साथीने दान देनेसे मना किया और कहा कि इस तरह अगर तुम दान (धन) दोगे, तो ये जिन्दगी-भर भिखारी ही रहेंगे। मेहनत करनेकी आदत चली जायगी। तुम-जैसे लोग ही इनको पैसे देकर सदाके लिये भिखारी बना देते हो।

थोड़ा आगे चले तो घास बेचनेवाली महिलाएँ खड़ी मिलीं। उन्होंने पास आकर विनती की कि घास लेकर सामने खड़ी गायोंको खिलायेंगे तो पुण्य लगेगा। पर यहाँ भी उन साहबने मुझे मना कर दिया और कहा कि ये सारी गायें पालतू हैं। इनके मालिक सुबह इनका दूध दुहकर जान-बूझकर घरसे बाहर निकाल देते हैं और शामको घर ले जाकर फिर इनका दूध दुहते हैं। दूध दुहकर सुबह-शाम कमाते हैं। गायोंको घास खिलाना उनके मालिकोंका कर्तव्य है। मैं फिर चुप हो गया, मुझे उनकी बातें मिर्च-जैसी लगीं। देखनेमें तो वे साहब धनवान् और सुखी-सम्पन्न लग रहे थे। इतनेमें सलीकेदार स्वच्छ कपड़े पहने एक व्यक्तिने दानकी याचना की, उसकी दोनों बाहें नहीं थी। मैंने चुपकेसे उसकी शर्टकी जेबमें कुछ रुपये डाल दिये।

धर्मशाला लौटे तो पता चला वे सज्जन पुत्र-पौत्रोंवाले हैं। मैं गोंदिया अपने घर वापस जानेको निकला तो वे भी मेरे साथ हो लिये। बसस्टैण्डपर पहुँचकर हम दोनों नासिक जानेवाली बसमें बैठ गये।

उनके पास बिस्कुटका पैकेट था, वे उसे खानेके लिये खोल ही रहे थे कि इतनेमें भिखारिन-जैसी औरत, जिसके एक हाथमें कटोरा और दूसरे हाथमें गठरी थी, बसमें चढ़ी। एक छोटा-सा बच्चा उस दु:खियारीका पल्लू पकड़े-पकड़े चल रहा था। उस बच्चेका हुलिया कुछ ऐसा था कि स्वयं यमराज भी होते तो उन्हें भी उसपर दया आ जाती, पर उस दिन होनी कुछ और ही थी।

बिस्कुटका पैकेट मेरे साथीके हाथमें था। उन्हें तो पहलेसे ही भिखारियोंसे नफरत थी, पर उन्हें शायद यह नहीं पता था कि कभी-कभी वक्त इतना खराब चलता है कि भीख माँगनेके सिवाय और कोई मार्ग दिखायी नहीं देता। उस औरतने जैसे ही खानेको कुछ माँगा, उन्होंने उसे खूब डाँट-डपटकर धिक्कार दिया। औरत तो कुछ न बोली, पर उसका छोटा-सा भुखियारा बच्चा रोने लगा। इसपर औरत गिड़गिड़ाकर बोली कि मेरे लिये न सही, पर इस बच्चेकी खातिर ही कुछ खानेको दे दो। सुनकर उन बुजुर्गने गालियाँ देते हुए उस भिखारिन-जैसी औरतको बच्चेसहित बससे नीचे उतार दिया। उन्हें ऐसा लगा, जैसे यह औरत ढोंग कर रही है। उस औरतको बेहद दु:ख पहुँचा और बच्चा भी जार-जार रोने लगा।

जाते-जाते वह बोली, 'आज जो तुमने मुझे और मेरे अबोध बच्चेको धक्का देकर भगाया है, अपने पैसे और समृद्धिपर इतना घमण्ड कर रहे हो, पर देखना कि एक दिन बच्चा और पैसा ही तेरी मृत्युका सबब (कारण) बनेगा।'

यह सब इतना जल्दी घटित हो गया कि मैं कुछ भी समझ नहीं पाया, पर ऐसा तो लगा कि औरतने

बुजुर्गको कोसा है और बद्दुआ दी है।

मुझे भय लगने लगा कि यह बद्दुआ कहीं सच न हो जाय, मगर उस अनजानको तो कुछ फर्क ही नहीं पड़ा और बड़े आराम-चैनसे सफर किया। रेलवे स्टेशन पहुँचकर हम अलग-अलग हो गये। वह मुम्बईकी और मैं गोंदियाकी ट्रेनमें बैठा। बात आयी-गयी हो गयी।

कुछ वर्षों बाद मुझे उन बुजुर्गवारका ख्याल आया। मैंने डायरीसे उनका मोबाइल नं० ढूँढ़ा और उनका हाल-चाल जाननेको मुम्बई फोन लगाया। फोन घरवालोंने उठाया और बताया कि उनका देहान्त कुछ वर्ष पूर्व ही हो गया था।

मुझे सुनकर बहुत दु:ख हुआ। कारण पूछनेपर पता चला कि उनका आधीरातमें उठकर पानी पीनेकी आदत थी। इसलिये पानीका भरा गिलास वे बिस्तरके पास ही रखते थे। उस दिन उनके पोतेने खेलते-खेलते चवन्नी (पचीस पैसेका सिक्का) उस गिलासमें गिरा दी। आधी रातको अर्धनिद्रामें उन्होंने उस गिलासका पानी पिया और वह सिक्का उनकी श्वास नलीमें जाकर अटक गया। किसीको बुला सकनेसे पूर्व ही उनके प्राण-पखेरू उड़ गये। सुबह जागनेपर घरवालोंको मालूम पड़ा कि यह हादसा हो चुका है।

यह सब सुनते ही मुझे उस गरीब औरतकी याद हो आयी, जिसे उन्होंने डाँट-डपट एवं गाली-गलौजकर भुखियारे बच्चेसहित बससे नीचे उतार दिया था और उस औरतने बद्दुआ दी थी कि एक दिन बच्चा और पैसा ही तेरी मृत्युका कारण बनेगा। उस दीन औरतकी बद्दुआ अपना काम कर चुकी थी।

उस दिनसे मेरा नजरिया बदल गया। तबसे मैंने ठान लिया कि लानत-मलामत नहीं करनी चाहिये। हम अगर किसीकी मदद नहीं कर सकते तो कम-से-कम बेइज्जत तो नहीं ही करना चाहिये; न तो धिक्कारना चाहिये और न ही तिरस्कार करना चाहिये।—**चन्द्रसेन रामनाणी**

[प्रेषिका—श्रीमती आशागंगा प्रमोद शिरढोणकर]

(३)

ईमानदारी आज भी शेष है

घटना २४ जून १९९५ ई० की है राजस्थानके दौसा जिलेकी सिंड़ोली-पंचायतके सरपंच अपनी मोटर साइकिलसे बाणगंगा होते हुए जा रहे थे, रास्तेमें उन्हें एक लावारिस पड़ी टोकरी मिली, जिसमें १३ हजार ४५८ रुपये नकद, एक साड़ी, ब्लाऊज तथा टाइमस्टार घड़ी थी। कुछ देरतक वहीं रुककर वे चारों तरफ देखने लगे। वे सोच रहे थे कि यदि इस टोकरीका हकदार कहींसे आ जाय तो उसे सौंपकर तब यहाँसे चलूँ, लेकिन बहुत देरतक भी जब कोई नहीं आया तो वे टोकरीको लेकर चले गये और गाँव-गाँवमें टोकरी-मालिककी तलाश करने लगे। आस-पासके क्षेत्रमें लगातार चार दिनोंतक खोज-बीन करनेके बाद उन्होंने टोकरीके असली मालिकका पता लगा लिया।

यह टोकरी सिंड़ोली-पंचायतकेपास गुढ़लिया ग्रामकी एक महिलाकी थी, जिसके खो जानेके कारण उस महिलाने खाना-पीनातक छोड़ दिया था। सरपंच उस महिलाके पास पहुँचे और पूरी पूछ-ताछ करके उन्होंने रुपयों तथा सामानसहित टोकरी महिलाको सौंप दी। अपनी खोयी हुई टोकरी पाकर उस महिलाको अपार हर्ष हुआ, लेकिन वह महिला यह सोचकर बहुत ही आश्चर्यचकित थी कि आज इस घोर कलियुगमें भी जहाँ सर्वत्र अत्याचार, पापाचार एवं बेईमानीका साम्राज्य व्याप्त है, इस प्रकारका ईमानदार व्यक्ति समाजके आदर्शके लिये उपस्थित है। उसने मानवताके साक्षात् प्रतीक सरपंचको मूक आशीर्वाद दिया और पुन: भगवान्‌की ओर उन्मुख होकर बार-बार प्रार्थना करती हुई कहने लगी—हे भगवन्! तुम्हारी इसी (सरपंच-सरीखी) मानवीय सृष्टिसे सम्पूर्ण धरापर धर्मका संरक्षण एवं समाजका उत्थान हो रहा है। सरपंच महोदयने यह सिद्ध कर दिया कि ईमानदारी आज भी शेष है।

—**किशनकुमार लखाणी**

मनन करने योग्य

अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्

शूरसेन देशमें चक्रवर्ती सम्राट् महाराज चित्रकेतु राज्य करते थे। उनकी एक करोड़ रानियाँ थीं। किंतु कोई पुत्र नहीं था।

एक दिन शाप और वरदान देनेमें समर्थ अंगिरा ऋषि स्वच्छन्द विचरण करते हुए राजा चित्रकेतुके महलमें पहुँच गये। आतिथ्य-सत्कार हो जानेके बाद चित्रकेतुने पुत्रप्राप्तिकी कामना व्यक्त की।

ऋषि अंगिराने बड़ी रानी कृतद्युतिको एक फल दिया और साथ ही कह दिया—राजन्! तुम्हारी पत्नीके गर्भसे एक पुत्र होगा, जो तुम्हें हर्ष और शोक दोनों ही देगा। यों कहकर अंगिरा ऋषि चले गये। तदनन्तर समय आनेपर महारानी कृतद्युतिने एक सुन्दर पुत्रको जन्म दिया। पुत्रके जन्मसे महाराज तो अति प्रसन्न हुए, किंतु अन्य रानियोंके मनमें जलन होने लगी। प्रतिदिन बालकका लाड़-प्यार करते रहनेके कारण सम्राट् चित्रकेतुका जितना प्रेम बच्चेकी माँमें था, उतना दूसरी रानियोंमें न रहा, इससे दूसरी रानियाँ ईर्ष्या करने लगीं। एक दिन चुपचाप विष देकर उन्होंने बालकको मार डाला।

धायने राजकुमारको मृत देखा तो वह पछाड़ खाकर

धरतीपर गिर पड़ी। उधर जिन विमाताओंने विष दिया था, वे हत्यारी रानियाँ भी वहाँ आकर झूठ-मूठ रोनेका ढोंग करने लगीं। महारानी शोकग्रस्त होकर मूर्च्छित हो गयीं।

उधर महाराज चित्रकेतु भी पुत्रशोकसे व्याकुल हो गये। उसी समय महर्षि अंगिरा एवं देवर्षि नारद उधरसे जा रहे थे। राजा चित्रकेतुको शोकाकुल देखकर वे दोनों महाराजको समझाने आये। उन्होंने कहा—राजन्! जिसके लिये तुम इतना शोक कर रहे हो, वह बालक इस जन्म और पहलेके जन्मोंमें तुम्हारा कौन था और अगले जन्मोंमें भी उसके साथ तुम्हारा क्या सम्बन्ध रहेगा?

राजन्! हम, तुम और हम लोगोंके साथ इस जगत्में जितने भी चराचर प्राणी वर्तमान हैं—वे सब मृत्युके पश्चात् नहीं रहेंगे। इससे सिद्ध है कि इस समय भी उनका अस्तित्व नहीं है; क्योंकि सत्य वस्तु तो सब समय एक-सी रहती है। त्रिकालाबाधित सत्य तो एकमात्र परमात्मा ही है। अत: शोक करना किसी प्रकार भी उचित नहीं है।

महर्षि अंगिराने कहा—राजन्! जिस समय पहले-पहल मैं तुम्हारे घर आया था, उसी समय मैं तुम्हें परम ज्ञानका उपदेश देता, परंतु मैंने देखा कि अभी तो तुम्हारे हृदयमें पुत्रकी उत्कट लालसा है, इसलिये उस समय तुम्हें ज्ञान न देकर मैंने पुत्र ही दिया। अब तुम स्वयं अनुभव कर रहे हो कि पुत्रवानोंको कितना दु:ख होता है—यही बात स्त्री, घर, धन, विविध प्रकारके ऐश्वर्य, सम्पत्ति, सगे-सम्बन्धी सबके लिये है; क्योंकि ये सब-के-सब अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, विनाशी हैं। अतएव ये सभी शोक, मोह, भय और दु:खके कारण हैं, मनके खेल-खिलौने हैं, सर्वथा कल्पित और मिथ्या हैं; क्योंकि ये न होनेपर भी दिखायी पड़ रहे हैं। यही कारण है कि एक क्षण दीखनेपर भी दूसरे क्षण लुप्त हो जाते हैं।

राजन्! तुम एकान्तमें एकाग्रचित्तसे आत्मचिन्तन

करो। तुम्हें सब कुछ स्वप्नवत् लगेगा।

चित्रकेतु बोला—महाराज! मैं पुत्रके वियोगमें शोकाकुल हो रहा हूँ। ये सब ज्ञानकी बातें मुझे अच्छी नहीं लगतीं। मुझे एकबार अपने पुत्रका दर्शन करा दो।

देवर्षि नारदने अभिमन्त्रित जल छिड़क दिया और मृत पुत्रको जीवित कर दिया।

जीवात्माने कहा—देवर्षे! ये मेरे किस जन्मके माता-पिता हैं? मैं तो अपने कर्मोंके अनुसार देवता, मनुष्य, पशु-पक्षी आदि अनेक योनियोंमें न जाने कितने जन्मोंसे भटक रहा हूँ। उनमेंसे ये किस जन्ममें मेरे माता-पिता हुए?

एक प्रसिद्धि[1]के अनुसार जीवात्माने राजाको सम्बोधित करते हुए कहा—पूर्वजन्मोंका फल भोगने एवं एक-दूसरेसे कर्म-फलोंका हिसाब चुकाने ही जीव अलग-अलग योनियोंमें जन्म लेता है। तुम्हारी रानियोंने मुझे विष देकर मार डाला और मुझसे बदला लिया। नारदजीकी कृपासे मुझे पूर्वजन्मोंकी कथा याद है।

पूर्वजन्ममें तुम्हारी रानियाँ चींटी हुआ करती थीं। एक बार मैंने भोजन करके मुँह धोया तो कुल्लेका जल उन चींटियोंपर गिरा और सब चींटियाँ मर गयीं। इस जन्ममें वे ही चींटियाँ तुम्हारी पत्नीके रूपमें आयीं और मुझे विष देकर मार डाला। मेरे पूर्व कर्मका ही फल मुझे मिला है।

उससे भी एक जन्म पहले मैं हिरण था। तुम व्याध थे, तुमने मेरा शिकार किया। मुझे राँधकर खा गये। मेरे वियोगमें मेरे माता-पिताने तड़पकर प्राण त्याग दिया। ठीक उसी प्रकार मैं भी तुम्हारा इकलौता पुत्र बनकर आया हूँ ताकि मेरे वियोगमें तुम्हें भी उतना ही कष्ट हो; क्योंकि वृद्धावस्थामें युवा पुत्रकी अर्थीका बोझ भारी होता है और वह शोक करते-करते पागल हो जाता है, किंतु राजन्! इस रहस्यको जाननेके बाद बुद्धिमान् पुरुष शोक नहीं करते। जीव नित्य और अहंकाररहित है। वह गर्भमें आकर जबतक जिस शरीरमें रहता है, तभीतक उस शरीरको अपना समझता है। यह जीव नित्य, अविनाशी, सूक्ष्म (जन्मादिरहित), सबका आश्रय और स्वयंप्रकाश है। इसमें स्वरूपतः जन्म-मृत्यु आदि कुछ भी नहीं हैं। फिर भी यह ईश्वररूप होनेके कारण अपनी मायाके गुणोंसे ही अपने-आपको विश्वके रूपमें प्रकट कर देता है।

इसका न तो कोई अत्यन्त प्रिय है और न अप्रिय, न अपना और न पराया; क्योंकि गुण-दोष (हित-अहित) करनेवाले मित्र-शत्रु आदिकी भिन्न-भिन्न बुद्धिवृत्तियोंका यह अकेला ही साक्षी है, वास्तवमें यह अद्वितीय है। यह आत्मा कार्य-कारणका साक्षी और स्वतन्त्र है, इसलिये यह शरीर आदिके गुण-दोष अथवा कर्मफलको ग्रहण नहीं करता, सदा उदासीन भावसे स्थित रहता है।[2]

जीवात्माके मुखसे इस प्रकारका आत्मज्ञानका उपदेश सुनकर महाराजका शोक नष्ट हो गया और उनका अन्तःकरण स्वच्छ और निर्मल हो गया, प्रेमके आँसू छलक आये। शरीरका एक-एक रोम खिल उठा। उसी दिन घर छोड़ दिया और शेष नारायणका दर्शन किया।—**पं० श्रीचन्द्रसागरजी**

[प्रेषक—श्रीश्यामसुन्दरजी पटेल]

---

१. इस सन्दर्भमें एक प्रसिद्धि यह भी है कि पूर्वजन्ममें इस जीवात्माकी माँने उसे भोजन बनानेके लिये कण्डा दिया था, जिसमें चींटियाँ थीं। उसने बिना उसका संस्कार किये उसमें आग लगा दी, जिससे वे चींटियाँ मर गयीं। वही जीवात्मा इस जन्ममें चित्रकेतुका पुत्र हुआ, उसकी माँ महारानी हुई और चींटियाँ अन्य रानियाँ हुईं।

२. एवं योनिगतो जीवः स नित्यो निरहङ्कृतः। यावद्यत्रोपलभ्येत तावत्स्वत्वं हि तस्य तत्॥
एष नित्योऽव्ययः सूक्ष्म एष सर्वाश्रयः स्वदृक्। आत्ममायागुणैर्विश्वमात्मानं सृजति प्रभुः॥
न ह्यस्यातिप्रियः कश्चिन्नाप्रियः स्वः परोऽपि वा। एकः सर्वधियां द्रष्टा कर्तॄणां गुणदोषयोः॥
नादत्त आत्मा हि गुणं न दोषं न क्रियाफलम्। उदासीनवदासीनः परावरदृगीश्वरः॥
(श्रीमद्भा० ६।१६।८—११)

गोशालाओंकी सुरक्षा

भारतमें प्राचीनकालसे गोरक्षा एवं गोसम्वर्द्धनके निमित्त पूर्वजोंने देशके विभिन्न भागोंमें गोसदन एवं गोशालाओंकी स्थापना की, जहाँ सामूहिक रूपमें गोसेवा एवं गोपालनकी व्यवस्था होती है।

भारतीय संस्कृतिमें गौको माँके रूपमें सर्वोपरि श्रद्धा प्रदान की गयी है। अपने शास्त्र तो कहते हैं कि 'गाय' में सम्पूर्ण देवी-देवताओंका निवास है। गायकी सेवा-पूजासे सम्पूर्ण देवी-देवताओंकी आराधना सम्पन्न हो जाती है। गोसेवासे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थ सिद्ध होते हैं। यह तो है गोसेवाका पारमार्थिक लाभ, परंतु गौसे जो लौकिक लाभ मिलते हैं, उनकी तो गणना ही नहीं की जा सकती। संसारमें ऐसा कोई जीव नहीं, जिसका मल-मूत्र भी लोकोपकारी और पवित्र हो। कहते हैं कि माँके दूधके बाद गोदुग्ध ही मानव-शिशुका पोषण करता है तथा यह एक प्रकारका अमृत है।

इस प्रकार गाय लौकिक एवं आध्यात्मिक दोनों दृष्टियोंसे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्राणी है। इन्हीं सब दृष्टियोंसे गोशालाओंकी स्थापना वस्तुतः उन सहृदय पुरुषोंके द्वारा हुई, जो गोमाताकी वास्तविकतासे परिचित थे। वे वृद्ध माँ-बापकी सेवा करनेकी भाँति ही बूढ़ी गोमाताकी सेवाको भी अपना परम कर्तव्य मानते थे। गोशाला नयी संस्था नहीं है। जैन और बौद्ध शासकोंके समय भी ऐसी संस्थाएँ थीं। मुसलमानी कालमें भी थीं और उनमें केवल स्वस्थ गायोंका ही नहीं; बल्कि बीमार और असहाय पशुओंका भी भरण-पोषण किया जाता था। यह एक ऐसा पवित्र धर्म समझा जाता रहा है कि सारा समाज इसमें हाथ बँटाता है और सद्‌गृहस्थ व्यापारी अपने व्यापारके मुनाफेका कुछ अंश लगाकर इस कार्यमें सहायता करते हैं।

आजके युगमें जनसंख्याकी वृद्धि एवं जीवनकी जटिलताओंके कारण सर्वसाधारण जनताके पास स्थान आदि साधनोंका अभाव होता जा रहा है। ऐसी परिस्थितिमें गोसेवाकी भावना होनेपर वे गायको अपने यहाँ न रखकर गोशालाके माध्यमसे गोपालन एवं गोसेवामें सहयोग कर सकते हैं। इन्हीं सब कारणोंसे व्रज (गोकुल-वृन्दावन), द्वारका तथा जगन्नाथपुरी आदि तीर्थस्थलोंमें गोशालाएँ विशेष रूपसे स्थित हैं।

काशीमें भी महामना मदनमोहन मालवीयजीने जीवदयाविस्तारणी गोशाला सवा सौ वर्षपूर्व स्थापित की थी, जो अनवरत रूपसे अबतक चल रही है। गोइठहाँ ग्राममें स्थित 'बाबन-बीघा' इस गोशालाका एक मुख्य केन्द्र है। जहाँ सैकड़ों-हजारोंकी संख्यामें गायोंका पालन होता है तथा इसके साथ ही कटनेके लिये जा रही गायोंको कसाईयोंसे बचाकर उन्हें इसी गोशालामें संरक्षित किया जाता रहा है, इस गोशालाके निकट कुछ जमीनें हैं, जिनमें गायोंके लिये हरा चारा उपजाया जाता है तथा वहाँ गायें चरती हैं, जिससे वे स्वस्थ रहती हैं, परंतु दुर्भाग्यवश आजकल एक नयी स्थिति बनी है—इस गोशालाकी जमीनपर सरकारकी ओरसे सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्ट बनाया जा रहा है, इसके लिये गोशालाकी कई एकड़ भूमि अधिग्रहीत की जा रही है। गोशालाके ट्रस्ट बोर्डकी ओरसे इलाहाबाद उच्च न्यायालयसे स्टे भी प्राप्त किया गया था, अधिकारियोंके प्रयत्नसे स्टे-आर्डरको निरस्त कराकर अधिग्रहणकी कार्यवाही प्रारम्भ कर दी गयी। मिली जानकारीके अनुसार यदि गोशालाकी भूमिपर यह कार्य सम्पन्न हुआ तो सवा सौ वर्ष पुरानी गोशाला नष्ट हो जायगी, कारण सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्टकी दुर्गन्धके कारण वहाँ गाय स्वस्थ नहीं रह सकती।

विश्वस्त सूत्रसे यह मालूम हुआ कि इस सीवेज ट्रीटमेन्ट प्लाण्टकी योजना संथवा ग्रामके लिये बनी थी, उसके मोड़तक पाइप लाईन भी बिछायी गयी है, परंतु कुछ राजनीतिक कारणोंसे यह प्लाण्ट वहाँ न लगाकर गोशालाकी भूमिमें लगाया जा रहा है।

गाय तो एक निरीह एवं मूक प्राणी है, वह तो प्रत्यक्ष रूपसे विरोध भी नहीं कर सकती। अतः सरकारको स्वयं संवेदनशीलताका परिचय देते हुए व्यापक हितोंमें इस योजनाको अन्यत्र स्थानान्तरित करना चाहिये।

गोसम्वर्द्धन एवं गोसंरक्षणके लिये आज आवश्यकता है कि सरकार स्थापित गोशालाओंकी तथा उनसे सम्बन्धित गोचर-भूमिकी रक्षा करते हुए और अधिक गोचर-भूमि गोशालाओंको प्रदान करे।

—सम्पादक

Dear Contributors,

Kalyana-Kalpataru, the English monthly Magazine published by Gita Press, Gorakhpur, has proposed to publish **Character Building Number** as their annual number in **October 2015**.

The tentative list of suggested topics is given below. The contributors are requested to choose any topic from the list or may select any related issue for their write up. The write up should be concise and expression simple and lucid. The write up may please be sent to reach us by **15th June, 2015**.

Character Building Number

1. What do we understand by Character? 2. How to Build Character? 3. What is the necessity of Building Character? 4. How far does Character help in God-realization? 5. Glory of good Character in Vālmīki Rāmāyaṇa 6. Glory of good Character in Tulasīdāsa's Rāmāyaṇa 7. What is loss of Character? 8. What factors help in Building Character? 9. What are obstacles in Building Character? 10. Role of mother in Building Character 11. Role of religion in Building Character 12. Necessity of Character in Students 13. Necessity of Character in Women 14. Bad consequences of loose Character 15. Strength of Character 16. Character in relation to Nation 17. Character in relation to City 18. Character in relation to Family 19. Main characteristics of Character 20. Background of Character 21. Sources of Character 22. Who can Build Character? 23. How to read Character? 24. Character Building in Children 25. Character Building in Youth 26. Self-determination in Character Building 27. Principles of Character in Manusmṛti 28. Norms of Character in ancient Texts 29. Norms of Character in Vedas 30.Celibacy—the Foundation of Character 31. Character in Jain Scriptures 32. Character in Buddhist Literature 33. Character in Christian Traditions 34. Character in different religions' Traditions 35. National Character of Hindu Society 36. Ideal Character 37. Inspiring stories for Building Character 38. Character of Śwetaketu in Upaniṣads 39. Character of Naciketā in Upaniṣads 40. Persons of Ideal Character—i. Lord Rāma ii. Truthful Hariścandra iii. Truthful Yudhiṣṭhira iv. Sage Dadhīci v. Satyakāma Jābāla vi. Upakośala vii. Cow-devotee Dilīpa viii. King Śibi ix. Devotee Prahlāda x. Sītājī xi. Sumitrājī xii Satī Madālasā xiii. Satī Sāvitrī xiv. Yaśodharā xv. Satī Anasūyā.

'कल्याण' नामक हिन्दी मासिक पत्रके सम्बन्धमें विवरण

१-प्रकाशनका स्थान—गीताप्रेस, गोरखपुर,
२-प्रकाशनकी आवृत्ति—मासिक,
३-मुद्रक एवं प्रकाशकका नाम—केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये),
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
४-सम्पादकका नाम—राधेश्याम खेमका,
राष्ट्रगत सम्बन्ध—भारतीय, पता—गीताप्रेस, गोरखपुर,
५-उन व्यक्तियोंके नाम-पते जो इस पत्रिकाके मालिक हैं और जो इसकी पूँजीके भागीदार हैं:—गोबिन्दभवन-कार्यालय, १५१, महात्मा गाँधी रोड, कोलकाता (पश्चिम बंगाल सोसाइटी पंजीयन अधिनियम १९६१ के अन्तर्गत पंजीकृत)।

मैं केशोराम अग्रवाल गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये इसके द्वारा यह घोषित करता हूँ कि ऊपर लिखी बातें मेरी जानकारी और विश्वासके अनुसार यथार्थ हैं। केशोराम अग्रवाल, (गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये)—प्रकाशक

प्र० ति० २०-२-२०१५
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/2014–2016
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR-03/2014–2016

पिछले कुछ दिनोंसे अनुपलब्ध पुस्तकें अब उपलब्ध

तीर्थाङ्क (कोड 636)—इस विशेषाङ्कमें तीर्थोंकी महिमा, उनका स्वरूप, स्थिति एवं तीर्थ-सेवनके महत्त्वपर उत्कृष्ट मार्ग-दर्शन-अध्ययनका विषय है। इसमें देव-पूजन-विधिसहित, तीर्थोंमें पालन करनेयोग्य तथा त्यागनेयोग्य उपयोगी बातोंका भी उल्लेख है। भारतके प्राय: समस्त तीर्थोंका अनुसन्धानात्मक ज्ञान करानेवाला यह एक ऐसा संकलन है जो तीर्थाटन-प्रेमियोंके लिये विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसके स्वाध्यायसे भी तीर्थाटनके सहज आनन्दको प्राप्त करनेका अलौकिक सुख प्राप्त किया जा सकता है। मूल्य ₹२००

गोसेवा-अङ्क (कोड 653)—शास्त्रोंमें गौको सर्वदेवमयी और सर्वतीर्थमयी कहा गया है। गौके दर्शनसे समस्त देवताओंके दर्शन तथा समस्त तीर्थोंकी यात्राका पुण्य प्राप्त होता है। इस विशेषाङ्कमें गौसे सम्बन्धित अनेक आध्यात्मिक और तात्त्विक निबन्धोंके साथ, गौका विश्वरूप, गोसेवाका स्वरूप, गोपालन एवं गो-संवर्धनकी मुख्य विधाएँ तथा गोदान आदि उपयोगी विषयोंका संग्रह हुआ है। यह अङ्क गौके आध्यात्मिक, आधिभौतिक स्वरूपका ज्ञान करानेवाला तथा गोसेवाकी प्रेरणा प्रदान करनेवाला है। मूल्य ₹१३०
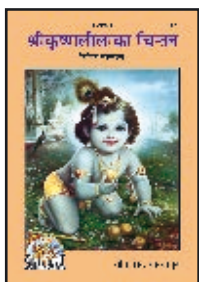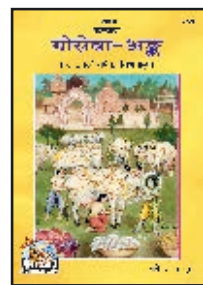
श्रीकृष्णलीलाका चिन्तन (कोड 571) ग्रन्थाकार—योगेश्वर भगवान् श्रीकृष्णका चरित्र भारतीय इतिहास और पौराणिक साहित्यका प्राण है। उनकी भक्ति मानव-जीवनका चरम लक्ष्य है। श्रीमद्भागवतके दशम स्कन्धका पर्यवसान भगवान् श्रीकृष्णके अलौकिक चरित्रके वर्णनमें ही हुआ है। इस पुस्तकमें भगवान् श्रीकृष्णके जन्मसे लेकर, बाल तथा पौगण्ड अवस्थाकी विभिन्न लीलाओंका बड़ा ही साहित्यिक, सरस एवं भावपूर्ण चित्रण किया गया है। इसमें वर्णित चरित्रके स्वाध्यायसे भाव-समुद्रमें डूबा जा सकता है। मूल्य ₹१५०

श्रीरामचरितमानस (कोड 1318) ग्रन्थाकार (मूल) रोमन-वर्णान्तर—श्रीरामचरितमानस भारतीय धर्म-दर्शनका अद्भुत व्याख्याता है। इसकी आदर्श शिक्षाको विश्वव्यापी बनानेके उद्देश्यसे प्रकाशित यह संस्करण अंग्रेजी भाषा-भाषी पाठकोंके लिये विशेष लाभदायक है। अंग्रेजी अनुवाद, सचित्र, सजिल्द, आकर्षक आवरणसहित। मूल्य ₹३०० (**कोड 1617**) मझला साइजमें भी उपलब्ध। मूल्य ₹१००

पाठकोंसे नम्र निवेदन

इस वर्ष जनवरी २०१५ का विशेषाङ्क '**सेवा-अङ्क**' के वी० पी० पी० का प्रेषण तकनीकी कारणोंसे धीमी गतिसे १३ फरवरीतक चला। जिन ग्राहकोंको वी० पी० पी० भेजी गयी थी उनके भुगतानकी प्रतीक्षा किये बिना फरवरी एवं मार्चके अङ्क सभी ग्राहकोंको प्रेषित कर दिये गये हैं, जिससे पाठकोंको मासिक अङ्क समयसे प्राप्त हो जाय।

अब कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर पढ़नेके लिये पाठकोंको उपलब्ध कराये जा रहे हैं।

व्यवस्थापक—'कल्याण कार्यालय'—गीताप्रेस, गोरखपुर—२७३००५